यूरोपीय संघ

वर्षा आधारित क्षेत्र में अनुकूलित कृषि पर प्रयोग (साफबिन)

STRENGTHENING ADAPTIVE FARMING IN BANGLADESH, INDIA & NEPAL (SAF-BIN)

शस्य विज्ञान विभाग,
सैम हिग्गिनबॉटम इन्स्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर,
टेक्नालॉजी एण्ड साईन्सेस
(डीम्ड यूनिवर्सिटी)
(पूर्ववर्तीः इलाहाबाद एग्रीकल्चरल इन्स्टीट्यूट)
इलाहाबाद–211007

जैविक खेती प्रबन्ध पर कृषि शोध सहायकों एवं लघु किसान समूह सदस्यों के प्रशिक्षण हेतु

संक्षिप्त ग्रंथ

संपादक

डॉ0 थामस अब्राहम
प्रशिक्षण समन्वयक एवं नोडल अधिकारी (साफबिन परियोजना)
प्राध्यापक (शस्य विज्ञान)
सैम हिग्गिनबॉटम इन्स्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर, टेक्नालॉजी एण्ड साईन्सेस
(डीम्ड यूनिवर्सिटी) (पूर्ववर्तीः इलाहाबाद एग्रीकल्चरल इन्स्टीट्यूट)
इलाहाबाद–211007

प्राक्कथन

लघु एवं सीमान्त कृषक एक तरफ सीमित क्षेत्र के धारक हैं तथा खाद्य एवं पोषण सुरक्षा देने के लिए यह आवश्यक है कि इन कृषकों के जोतों के उत्पादकता में अभिवृद्धि की जाये। भारतवर्ष में विगत अर्ध शताब्दी में आयी हरित क्रान्ति द्वारा खाद्यानों के क्षेत्र में आत्म–निर्भरता की सफलता के साथ निर्यात में भी विकास हुआ। परन्तु यह सफलता ने पर्यावरण सुरक्षा, मृदा स्वास्थ्य तथा टिकाऊपन पर एक प्रश्नचिन्ह उठा दिया है। खाद्य तथा जल चक्र में बढ़ते रसायन अवशेष, भोजन की घटती गुणवत्ता, वायू, मृदा तथा जल प्रदूषन एवं मृदा की घटती उत्पादकता इत्यादि ने एक जटिल समस्या का कुरूप ले लिया है। जनसंख्या विस्फोट ने इस स्थिति को अत्यन्त गम्भीर बना लिया है।

वर्तमान में कृषि निवेशों की बढ़ती कीमत, मृदा में उर्वरक तत्वों की कमी तथा अभाव एवं गहन खेती ने प्रतिपालकियता पर अवरोध पैदा किया है जिसे सामना करने के लिए जैविक खेती के विकल्प को लागू किया जा सकता है, जिससे सुपरिणाम सुनिश्चत हो।

प्रस्तुत कृषि शोध सहायकों एवं लघु किसान समूह सदस्यों के प्रशिक्षण हेतु संक्षिप्त ग्रंथ में जैविक खेती के प्रमुख सिद्धांतो एवं तकनीकियों को सरल एवं सुबोध रूप से प्रस्तुत करने की चेष्टा किया गया है। प्रक्षेत्रों को व्यवस्थित रीति से जैविक खेती प्रणाली में रूपान्तरण हेतु विचार एवं सक्रीय कदम ही सफलता प्रदान करेगी।

इस संक्षिप्त ग्रंथ के प्रकाशन हेतु आलेख प्रदान करने वाले सभी विशेषज्ञों की भूमिका का सादर कृतज्ञ हूँ।

यूरोपीय संघ वित्त पोषित अंतर्राष्ट्रीय साफबिन परियोजना के अन्तर्गत आयोजित जैविक खेती प्रबन्धन विषय पर तीन दिवसीय प्रशिक्षण कार्यक्रम को विशेष रूप कैरिटास इण्डिया के सहयोग द्वारा हुआ है, जिसका मैं आभार प्रकट करता हूँ।

सैम हिग्गिनबॉटम इन्स्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर, टेक्नालॉजी एण्ड साईन्सेस – डीम्ड विश्वविद्यालय, इलाहाबाद के माननीय कुलपति एवं प्रशासन द्वारा प्राप्त हर प्रकार की सहायता एवं सहयोग का धन्यवाद ज्ञापन करना मेरा कर्तव्य बनता है।

इस परियोजना को लागू करने हेतु निदेशक (शोध), कृषि संकाय एवं महाविद्यालय के अधिष्ठातागण, परोक्ष एवं अपरोक्ष रूप में प्रदान किये गये सभी व्यक्तियों का योगदान एवं सहभागिता को आभार व्यक्त करते हुए परम प्रदान ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि इस प्रयास को सार्थक एवं सफल बनाने में अनुग्रहित करें। आमीन।

थामस अब्राहम

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	विषय	पृष्ठ सं.
1.	प्राक्कथन	i
2	अनुक्रमणिका.....	ii
3.	निदेशक शोध, शियाट्स इलाहाबाद का सन्देश	iii
4.	निदेशक प्रसार, शियाट्स इलाहाबाद का सन्देश	iv
5.	जैविक खेती–टिकाऊ एवं प्रतिपालकीय	1
6.	जैविक खाद तैयार करने की पद्धतियाँ	5
7.	अतिरिक्त कार्बनिक खाद तैयार करने की पद्धतियाँ एवं रीतियाँ	11
8.	जैव उर्वरक	16
9	जैविक खेती के लिए शस्य तकनीक	21
10.	देशी विधियों द्वारा फसल के हानिकारक कीटों का नियंत्रण	23
11.	जैविक नाशीजीव नियंत्रण.....	25
12.	जैविक खेती में टिकाऊ तकनीकियाँ	29
13.	जैविक खेती में कृषि वानिकी	34

सैम हिग्गिनबॉटम इन्स्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर, टेक्नालॉजी एण्ड साइंसेज़
Sam Higginbottom Institute of Agriculture, Technology & Sciences
(Formerly Allahabad Agricultural Institute)
(Deemed to be University)
Allahabad - 211 007, India

NAAC Accredited A

ISO 9001:2008 Certified

Office : 91-532-2684296
Mob. : 91-9450619986
Website : www.shiats.edu.in
Email : draabroadway@gmail.com

Prof. (Dr.) A.A. Broadway
Director (Research)

प्रो० (डॉ०) आरिफ ए. ब्राडवे,
निदेशक शोध

सन्देश

यह हर्ष का विषय है कि साफबिन परियोजना के अन्तर्गत शस्य विज्ञान विभाग, सैम हिग्गिनबॉटम इन्स्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर, टेक्नालॉजी एण्ड साईन्सेस – डीम्ड विश्वविद्यालय, इलाहाबाद में दिनांक 27.08.2014 से 29.08.2014 तक तीन दिवसीय जैविक खेती प्रबन्धन विषय पर कृषि शोध सहायकों एवं लघु किसान समूह सदस्यों हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित हो रहा है।

दक्षिण एशिया की निरन्तर बढ़ती हुयी जनसंख्या, प्राकृतिक संसाधनों की प्रदूषित स्थिति व विभिन्न प्रकार के कृषि उत्पादकता को कम करने वाले घटकों को देखते हुए जैविक खेती को अपनाना सर्वोचित है। जैविक खेती एक परंपरागत तथा आधुनिक विधियों व प्रणालियों का उचित वैज्ञानिक शोध द्वारा समागमन है, तथा प्रकृति को कायम रखने में सक्षम पद्धति है।

यह एक महत्वपूर्ण अवसर है जब कृषि वैज्ञानिकों द्वारा कृषि शिक्षा, कृषि प्रसार एवं शोध तथा कृषि अर्थव्यवस्था के उन्नयन हेतु सम्यक् रूप से कुशल एवं अनुभवी वैज्ञानिकों द्वारा प्रशिक्षण दिया जायेगा।

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि कैरिटास इण्डिया इस दिशा में सतर्क है तथा इस परिपेक्ष्य में लघु एवं सीमान्त कृषकों के क्षमता विकास हेतु प्रशिक्षण सत्रों का आयोजन किया जा रहा है।

प्रो० (डा०) थामस अब्राहम, प्रशिक्षण समन्वयक एवं नोडल अधिकारी साफबिन (वर्षा आधारित क्षेत्र में अनुकूलित कृषि पर प्रयोग) के इस प्रयास के लिए मैं उन्हें बधाई देता हूँ। प्रक्षिण की सफलता के लिए शुभ कामना भी करता हूँ।

[प्रो० (डॉ०) आरिफ ए. ब्राडवे]

प्रसार निदेशालय
Directorate of Extension
सैम हिग्गिनबॉटम इन्स्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर, टेक्नोलॉजी एण्ड सांइसेज
Sam Higginbottom Institute of Agriculture, Technology & Sciences
(Formerly Allahabad Agricultural Institute)
(Deemed to be University)
Allahabad-211 007, U.P. (INDIA)

प्रो० (डॉ०) नाहर सिंह,
निदेशक प्रसार

Office : 91-532 2684897, 2684292
Fax : 91-532-2684394
Website : www.shiats.edu.in
E-mail : deaaidu@rediff.com

सन्देश

यह प्रसन्नता का विषय है कि कैरिटास इण्डिया द्वारा अनुमोदित व यूरोपीय संघ द्वारा वित्त पोषित अंतर्राष्ट्रीय परियोजना साफबिन के अन्तर्गत, शस्य विज्ञान विभाग, सैम हिग्गिनबॉटम इन्स्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर, टेक्नालॉजी एण्ड साईन्सेस – डीम्ड विश्वविद्यालय, इलाहाबाद में दिनांक 27.08.2014 से 29.08.2014 तक तीन दिवसीय जैविक खेती प्रबन्धन विषय पर कृषि शोध सहायकों एवं लघु किसान समूह सदस्यों हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित हो रहा है।

देश कर निरन्तर बढ़ती हुयी जनसंख्या, प्राकृतिक संसाधनों के अनियमित दोहन, अनियोजित औद्योगिकरण व नगरीकरण, खेतों में रासायनिक उर्वरक एवं कीटनाशकों का असंतुलित उपयोग बहुआयामी एवं दूरगामी प्रभाव वाली समस्यायें उत्पन्न कर रहे है। अतः यही समय है कि इनके समाधान पर समय रहते चिन्तन करते हुए किसानों एवं ग्रामीण शोधकर्ताओं को इन विभीषिकाओं के प्रति जागरूक करते हुए बढ़ती जनसंख्या के भरण–पोषण हेतु यथेष्ट गुणवत्ता पूर्ण कृषि उत्पादों में अभिवृद्धि सुनिश्चित की जाये, जो कि जैविक खेती के माध्यम से सम्भव है।

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि कैरिटास इण्डिया इस दिशा में सतर्क है तथा इस परिपेक्ष्य में लघु एवं सीमान्त कृषकों के क्षमता विकास हेतु प्रशिक्षण सत्रों का आयोजन किया जा रहा है।

यह एक अभिनव प्रयास है जिसको बढ़ावा देने तथा इस दिशा में कार्य हेतु **प्रो० (डा०) थामस अब्राहम, प्रशिक्षण समन्वयक एवं नोडल अधिकारी साफबिन (वर्षा आधारित क्षेत्र में अनुकूलित कृषि पर प्रयोग) को सफलता की मंगल कामना** करता हूँ।

[प्रो० (डॉ०) नाहर सिंह]

जैविक खेती – टिकाऊ एवं प्रतिपालकीय

डॉ0 थामस अब्राहम
प्राध्यापक (शस्य विज्ञान), शियाट्स इलाहाबाद

भूगोल की उपरी परत जिसे हम मिट्टी या मृदा के नाम से जानते हैं, 90 प्रतिशत भोजन का स्रोत है। स्वस्थ मृदा में जैविक, भौतिक, रासायनिक तथा कार्बनिक पदार्थों का एक उचित सन्तुलन बना रहना अत्यंत आवश्यक है।

अधिक लाभ एवं लोभ के कारण इस संतुलन को महत्व न देते हुए कृषि प्रबन्धन करते समय मृदा की जीवित अवस्था भंग हो जाती है। फसल चक्रों का अनुचित संयोजन एवं पुनरावृति से उर्वरक तत्वों की मात्रा में घटी तथा अनुपातों में त्रुटी के होने से तत्वों की कमी या कभी–कभी अत्यधिक अथवा विषैला रूप भी ले सकता है।

रसायनिक खेती महंगी होने के साथ–साथ, इसके होते हमारा समस्त पर्यावरण–मिट्टी, जल, वायु भी प्रदूषित हो गया है। रसायनिक कीट नाशियों के प्रयोग से यद्यपि रोग, कीट एवं खरपतवार नियंत्रण में एक सीमा तक सफलता मिलती है, परन्तु इसके जहरीले अवशेष खाद्यान्न, दूध, मांस, मछली, पानी में पहुँच कर मनुष्य एवं जीव जन्तुओं के लिए घातक सिद्ध हो रहे हैं। निम्नलिखित कारणों से जैविक खेती करना अति आवश्यक हो गया हैं :

1. खेती में निरंतर मशीनीकरण एवं यन्त्रों के उपयोग करने से पशुपालन व गोबर खाद की अत्यधिक कमी होती जा रही है। फलस्वरूप, अधांधुध एवं अत्यधिक मात्रा में रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग करते रहने से भूमि की उर्वराशक्ति नष्ट होती जा रही है। अकार्बनिक व कार्बनिक घटकों के असंतुलन से पानी में लवणीय वृद्धि होने से लाभकारी जीवाणुओं की संख्या में कमी होती जा रही है। उपर्युक्त के फलस्वरूप हमारे प्राकृतिक खाद्य उत्पादों के स्वाद एवं पोषक गुणों में भी गिरावट आ रही है।
2. मेथेनोग्लोबनिमियॉ, कैंसर, अस्थमा व श्वास सम्बन्धी बीमारियॉ भी इन्हीं नाइट्रेट, नाइट्राइट, नाइट्रिक एसिड की भोजन और पानी में अधिकता के कारण बढ़ती जा रही हैं, इसी कारण आज मनुष्य की औसत आयु भी घटती जा रही है। हार्मोन का संतुलन बिगड़ रहा है। वर्तमान में प्रत्येक भारतवासी जो शाकाहारी है, लगभग 362 मि. ग्रा. तथा मांसाहारी 356 मि.ग्रा. फसल रक्षा की रासायन प्रति दिवस अपने भोजन–पानी के साथ पान कर रहा है। जबकि यूरोप वासी इसका आधा से भी कम मात्रा तथा अतिविकसित देश जैसे अमरीका, कनाडा तथा आस्ट्रेलिया के निवासी इसका 5 प्रतिशत से भी कम का सेवन कर रहें हैं (यादव, 2008)।
3. कृषि में उपयोग होने वाले रसायनिक कीटनाशक, पानी, हवा, मिट्टी में मिलकर जन स्वास्थ्य के साथ जैव विविधिता को भी खत्म कर रहे हैं। इनके प्रयोग से परिस्थितिक संतुलन बिगड़ रहा है। खाद्य पदार्थो की विषाक्तता बढ़ने से जहॉ मानव स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है, वही समूचा पर्यावरण – चक्र भी प्रभावित हो रहा है।
4. रासायनिक खेती से हमारी कृषि भूमि निरंतर कमजोर एवं बंजर होती जा रही है।
5. रसायनिक खेती में सिंचाई की आवश्यकता भी अधिक होती है, जिससे कृषि भूमि में जल स्तर की समस्या देश के कृषि में अग्रणीय राज्य जैसे– पंजाब, हरियाणा आदि में प्रखर होती जा रही है।
6. रसायनिक खेती में परागण की समस्या आती है। क्योंकि इस क्रिया से संम्बधित कीट, पंतगों आदि की संख्या में गिरावट होती है।
7. फसल की गुणवत्ता जैस सुगंध, स्वाद, उनका तरोताजा रहना आदि में भी कमी हो जाती है।

इन सबके अतिरिक्त रसायनिक खेती लागत प्रधान और मंहगी है, जो हमारे देश के औसत किसान की पहुंच के बाहर होती जा रही है, क्योंकि इसमें बीज, रसायनिक उर्वरक, बीज उपचार से लेकर सभी कीट नाशी एवं सिंचाई आदि सभी संसाधन बाहर से मूल्य देकर जुटाने पड़ते हैं।

मृदा, जल तथा वायू के प्रदूषण एक आकस्मिक मोड़ ले रहा है तथा कृषि प्रक्षेत्रों में एक नये अनन्त, हरित क्रान्ती जैविक खेती प्रणाली द्वारा होना आवश्यक सिद्ध हो रहा है।

वर्तमान में प्रत्येक भारतवासी जो शाकाहारी है, लगभग 362 मि. ग्रा. तथा मांसाहारी 356 मि.ग्रा. फसल रक्षा की रासायन प्रति दिवस अपने भोजन–पानी के साथ पान कर रहा है। जबकि यूरोप वासी इसका आधा से भी कम मात्रा तथा अतिविकसित देश जैसे अमरीका, कनाडा तथा आस्ट्रेलिया के निवासी इसका 5 प्रतिशत से भी कम का सेवन कर रहें हैं (यादव, 2008)।

पर्यावरण को सन्तुलित, आर्थिक रूप से लाभप्रद, सामजिक दृष्टिकोण से यथोचित, मानवता को प्रेरित तथा सरल, अनुकूल रीतियों की पाँच गुणों से परिपूर्ण एवं सुपरिणाम (आशावान) का समावेशन जोकि टिकाऊपन अथवा प्रतिपालकियता का प्रमाण है, हम जैविक खेती में देखते हैं।

प्रकृति सभी प्रकार के संतुलित चक्र एवं प्रणालियों का सर्वोच्य नमूना है, अतः भोजन उत्पादक, उपभोगता एवं सेन्द्रीय पदार्थों को सड़ाने वाले जीवियों का एक उचित सन्तुलन ही सफलता की कुन्जी है। प्राकृतिक खेती के चार मूलभूत सिद्धान्त हैं।

1. वैविध्यता को बनाये रखना
2. मृदा को जीवित रखना
3. पुनःनिर्माण का चक्र बनाये रखना
4. अनेक एवं विविध तल्लों की बनावट या रचना को कायम रखना

1. वैविध्यता को बनाये रखने के लिये फसल चक्र, विविध प्रकार के पौध एवं जानवर तथा उद्यमों का संयोजन को प्रोत्साहित करना है।
2. मृदा को जीवित रखने के लिय निरंतर रूप से कार्बनिक स्रोतों का प्रयोग करें, भूमि को कभी भी कटने न दें तथा उन कारक जो कि जीवित दशा को क्षति पहुँचाते हो उनका नियंत्रण तथा उन्मूलन करें।
3. मृदा मे से उगायी गई जैव पदार्थ (बायोमास) को विभिन्न उद्यमों द्वारा पुनः निवेश करने से पुनःनिर्माण का चक्र सुचारू रूप से बना रहेगा।
4. एक ही अथवा कुछ गिने चुने फसल/पौधों की जाति को ही, जो कि एक ही तल्ले की हों, न लेकर सम्मिश्रण प्रणाली को अपनाने से प्राकृतिक संसाधन– जल, सूर्य प्रकाश, इत्यादि का सबसे अधिक एवं सक्षमता से प्रयोग में लाया जाना ही टिकाऊ तथा प्रतिपालकीय सिद्ध होगा।

फसल के उत्पाद में आवश्यक 34 विभिन्न तत्वों में से लगभग 92–98 प्रतिशत चार तत्व – कार्बन, आक्सीजन, नत्रजन एवं हाइड्रोजन पौधों के सूखे वजन को प्रदान करती है। पौधों में यह क्षमता है कि वातावरण में से इन्हें प्राप्त कर लें। शेष 30 तत्व जोकि मृदा में से प्राप्त होती है, 12 अति आवश्यक है तथा 18 तत्वों की जरूरत बहुत ही कम मात्रा में होती है। बारह अति आवश्यक तत्वों में से 2 – पोटैशियम तथा क्लोराइड पौधों के भाग नहीं (नान–कान्स्टीट्यूटिव) तथा 10 (फास्फोरस) बोरान, कैल्शियम, मैंग्नीशियम, गंधक, लोह, मैंन्गनीज, मोलिब्डनम, ताँबा तथा जस्ता) पौधों में उपस्थित (कान्सटीट्यूटिव) होती है (बौर्गीग्नान, 1998)। यह जानी हुई बात है कि यदि रासायनिक या कृत्रिम रूप में खाद प्रदान हुआ तो पौधों की कुछ जैविक क्रियायें जिससे प्राकृतिक रूप से पौधे नत्रजन प्राप्त करते हैं (जैसे नत्रजन का समावेश करना) तो इन क्रियाओं में रूकावट अथवा मन्दता आ जाती है (स्ट्रीटर, 1988)। मृदा वैज्ञानिक अक्सर अनुचित अनुपात या मात्रा में उर्वरक स्रोतों के प्रयोग से सचेत करते हैं तथा कार्बनिक स्रोतों के प्रयोग का प्रोत्साहन करते हैं, जिससे सूक्ष्म उर्वरक तत्वों की कमी न हो (एन, ए, ए, एस, 2005)।

अनुसधान द्वारा जैविक खेती की कुछ क्रियाओं एवं तकनीकियों का अच्छा प्रभाव साबित हुए हैं जिन में से कुछ निम्नांकित हैं :

1. जैविक खेती में पशुओं, तथा विविध प्रकार के फसलो/पौधों (जैसे – एक वर्षीय तथा बहुवर्षीय) का समावेश महत्वपूर्ण है।

   (क) वृक्ष एक प्रकार की जैविक खनाई क्रिया द्वारा भूमि के गहराई से उर्वरक तत्वों को उपर लाते हैं, जिससे ज्यादातर फसल जोकि उथले जड़ वाले हैं लाभान्वित होती है।

   (ख) फसल आवशिष्टों पर आधारित पशु पालन आंशिक रूप से पचाया अथवा विघटित हुआ जैव उत्पाद पैदा करती है, जो केचुए जैसे छोटे जीवियों का उत्तम आहार बनती है।

   (ग) प्रति 1 ग्रा. गोबर में लगभग 49000 सेल्यूलोस को विघटित करने वाले सूक्ष्म जीवी तथा लगभग 140000 फॉस्फेट घुलनशील बैक्टीरिया पायी जाती है।

2. वानस्पतिक जैव उत्पाद फसलों के उत्पादकता का मूल स्रोत (संचालक अथवा इंजन) है तथा प्रक्षेत्र पर ही से इसको प्राप्त किया जा सकता है।

   (क) ग्लाइरीसिडिया सेपियम (गुलंछा) जैसे दलहन वर्ग के पौधों को बाँधों/मेडीयों पर 1.5 मी. की चौड़ाई में उगाये तो 1 हेक्टेयर भूमि के 400 मी. के धेरे (बाड़ा) से लगभग 22 कि.ग्रा. नत्रजन तीसरे वर्ष में तथा लगभग 77 कि.ग्रा. नत्रजन सातवे वर्ष से वर्षा आधारित परिस्थिति में प्राप्त कर सकते हैं।

   (ख) बीज बनने से पूर्व खरपतवारों का प्रयोग उर्वरक चक्र में कम्पोस्ट तकनीकी इत्यादि द्वारा किया जा सकता है।

   (ग)फसलों के अवशिष्टों को सीधे या परोक्ष रीति से उर्वरक चक्र हेतु प्रयोग करना लाभकारी तथा टिकाउ है।

3. पलावर का प्रयोग मृदा के भौतिक, रासायनिक तथा जैविक गुणों को सुधारने तथा बड़ोतरी करने में महत्वपूर्ण है।

4. राइजोबियम, एजोटोवेक्टर, इत्यादि तथा वानस्पतिक वृद्धि को प्रोत्साहित करने वाले अन्य सूक्ष्म जीवी पौधों के जड़ों के पास या अन्दर रहकर अनेक प्रभावकारी क्रियाओं को कायम रखती है। अतः इनका टीकाकरण तथा मृदा में पनपाना लाभकारी एवं टिकाऊ सिद्ध हुआ है।

5. जैविक खेती में कीट रोग एवं अन्य बाधाओं की समस्या प्रारम्भिक समय में अधिक होता है, परन्तु फसलों की वैविधता एवं जैविक संसाधानों पर निर्भर अनेक रोकथाम तथा प्रबन्ध द्वारा उनका निराकरण किया जा सकता है।

6. प्रायः जैविक खेती अधिक मजदूरी तथा लाभ रहित उद्यम माना जाता है, परन्तु हमारे देश के अनेक प्रदेशों में सफलता के उदाहरण है, जहाँ जैविक खेती प्रणाली के दीर्घ समय लागू होने से कुछ उल्लेखनिय बिन्दु उभर कर आये हैं :

   (क) रोजगार की वृद्धि

   (ख) वर्तमान में कृषि निवेशों का व्यय घटना

   (ग) टिकाउ एवं लाभकारी उद्यम

   (घ) पर्यावरण एवं भोजन में गुणवत्ता की वृद्धि

मृदा प्रबन्धन

कृषि में मृदा के प्रबन्धन के लिए परीस्थिति अनुसार तीन रितियों को लागू करना होगा :

1. भूमि विकार जैसे मृदाक्षरण, लवणीकरण, ऊसर/ क्षारीयकरण, अम्लियता अथवा अनुचित जल निकास इत्यादि के कारण अनुत्पादित भूमि को उत्पादक बनाने का कार्य।

2. विकृत भूमि की नष्ट हुई उर्वरा क्षमता एवं उत्पादकता क्षमता का सुधार कार्य।

3. विकार रहित उर्वर भूमि की उर्वरा शक्ति को स्थिर रखना।

कृषि उद्यम में दो प्रमुख कार्य निरन्तर रूप से सुनिश्चित करना अनिवार्य है :

(क) मृदा का संरक्षण

(ख) फसलों की आवश्यकता अनुसार उर्वरक प्रबन्ध :

मृदा संरक्षण अनेक विधियों द्वारा किया जा सकता है, जिन्हें दो वर्गों में बांटा जा सकता है:

1. वानस्पतिक आवरण द्वारा जैसे वनीकरण, चारागाह विकास, फसल चक्र, पट्टियों में खेती, इत्यादि।
2. यांत्रिक विधियों द्वारा जैसे मेड़ बन्दी, भूमि समतल करना, विभिन्न प्रकार के बन्धियाँ बनाना, जल निकासी, इत्यादि।

जैविक खेती में मृदा के उर्वरक प्रबन्धन विभिन्न जैविक खादों के प्रयोग से किया जा सकता है। इनकी उत्पादन प्रक्षेत्र पर ही सम्भव है तथा इनके सिधान्तों एवं विधियों को सही प्रकार लागू करने से टिकाऊ खेती में सफलता प्राप्त हो सकती हैं।

जैविक खाद तैयार करने की पद्धतियाँ

श्री जटाशंकर, सुरभि शोध संस्थान, वाराणसी

पौधों के अवशेष और जानवरों के मल–मूत्र में जैविक और प्राकृतिक ढंग से आये रासायनिक परिर्वतनों से कम्पोस्ट खाद तैयार होती है। इसमें छ' महीने से एक वर्ष तक समय लग जाता है। इसके लिए दो तरीके अपनाये जाते हैं। एक जमीन में गढ्ढा बनाकर दूसरा जमीन पर ढेर लगाकर। गोबर, गोमूत्र, जीव अवशेष, कृषि अवशेष, कूड़ा, घास, खरपतवार, जीव के मल–मूत्र, काई, जलकुम्भी, खलियाँ, भुजबुन, कारखानों के जैविंक अवशेष, मही, स्लज, राख, पाइराइट, जिप्सम, जीवाणु कल्चर, मिट्टी इत्यादि से कृषि विशषज्ञों ने शोधकर खाद बनाने की कुछ कम्पोस्ट पद्धतियाँ विकसित की हैं। कम्पोस्ट प्रक्रिया में सूक्षम जीवों का विकास होता है।

प्राथमिक आवश्यकताएँ: (1) कचरे का पृथकीकरण (2) कचरे का आकार (3) कचरे का प्रकार (4) उपयुक्त स्थान (5) नमी (6) वायु संचार (7) तापमान नियंत्रण (8) जल, आदि।

I. **समन्वय कम्पोस्ट** : समन्वय विधि में लम्बाई 10 फीट, चौड़ाई 3 फीट, गहराई 2 फीट का गढ्डा तैयार करते हैं। गढ्डे में दो–दो फीट की दूरी पर मोटा बांस का 6 फीट का टुकड़ा गाड़ देते हैं। इस प्रकार चार बांस गाड़ते हैं बांस के स्थान पर चार इंच व्यास की प्लास्टिक पाइप जिसमें पर्याप्त छेद हो, प्रयोग कर सकते हैं। गढ्डे की भराई नाडेप की तरह करते हैं और जमीन से डेढ़ फीट ऊपर लाकर नाडेप की तरह सील कर बांस को निकाल देते हैं। प्लास्टिक की छेद वाली पाइप है तो उसे निकालने की आवश्यकता नहीं है। नमी एवं ऊपरी हिस्से की मरम्मत का ध्यान रखते हैं। ऊपर छाया हेतु लौकी आदि की बेल चढ़ा सकते हैं। चार माह में यह पककर अच्छी खाद बन जाती है।

II. **नाडेप पद्धति** : श्री नारायण देवराव पांढरीपांडे (नाडेप काका) संचालक, बाकुका–नाडेप केन्द्र पुसद, जिला यवतमाल (महाराष्ट्र) ने खाद बनाने की इस पद्धति की शोध की, जो नाडेप नाम से प्रचलित है।

नाडेप कम्पोस्ट टैंक (टंकी) : नींव डालकर जमीन के ऊपर ईंट का एक आयताकार टैंक बनाया जाता है, जिसकी दीवारें, 9 इंच चौड़ी होता है। टैंक के अन्दर की लंबाई 12 फीट, चौड़ाई 5 फीट, ऊँचाई 3 फीट होती है। कुल आयतन 180 घनफुट होता है। ईटों की जुड़ाई मिट्टी से की जा सकती है, सिर्फ आखिरी रद्दा सीमेंट से जोड़ा जाता है ताकि टंकी गिरने का डर न रहे। टैंक का तल फर्श ईंट बिछाकर पक्का किया जाता है। परन्तु उस पर सीमेन्ट का प्लास्टर नहीं करना चाहिए।

यह टंकी हवादार होना आवश्यक है। टंकी बाँधते समय चारों दीवारों में छेद रखे जाती हैं। ईंटों की हर दो रद्दों की जुड़ाई के बाद तीसरे रद्दे की जुड़ाई करते समय हर एक ईंट जुड़ाई के बाद 7 इंच का छेद छोड़कर जुड़ाई की जाती है। इस प्रकार तीसरे, छठवें, और नवें रद्दे में छेद बनते हैं। यह छिद्र एकान्तार में छोड़े जाते हैं। एक के ऊपर दूसरा छिद्र न आये, यह ध्यान रखना आवश्यक है। इस टैंक की अंदर व बाहर की दीवारों और फर्श को टैंक भरने से पूर्व गोबर मिट्टी से लीप दिया जाता है। टंकी सूखने के बाद ही प्रयोग में लाई जाती है।

नाडेप कम्पोस्ट बनाने के लिए समाग्री : (i) खेती तथा अन्य वानस्पतिक व्यर्थे पदार्थे, जैसे कि सूखे छिलके, डंठल, टहनियाँ, जड़ें आदि 1400 से 1500 किलोग्राम (400 सीएफट)। में प्लास्टिक, काँच, पत्थर नहीं रहना चाहिए।

(ii) **गोबर** : मात्रा 90 से 100 कि.ग्रा. (8–10 टोकरी)। गोबर गैस संयंत्र से निकला गोबर का घोल भी उपयोग में लाया जा सकता है। यह गोबर से ढाई गुना होना चाहिए।

(iii) **सूखी छनी मिट्टी** : खेत की या नाले वगैरह की मिट्टी के उपयोग के पहले उसमें प्लास्टिक, काँच, पत्थर आदि खाद न बनने वाले पदार्थ निकाल लें। मिट्टी छान लें। मात्रा 1750 कि.ग्रा. (120 टोकरी) गोमूत्र से सनी मिट्टी विशेष लाभदायी होती है।

(iv) पानी : ऋतुमान के अनुसार कम–ज्यादा होगा। वर्षा ऋतु में कम, ग्रीष्म ऋतु में अधिक। साधारणतया सूखे वानस्पतिक पदार्थ के वजन बराबर 35 प्रतिषत नमी के कारण मात्रा 1500 से 2000 लीटर। कम्पोस्ट खाद की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए गोमूत्र एवं पशुओं का मूत्र इकट्ठा कर उसका उपयोग लाभकारी होता है।

नाडेप कम्पोस्ट टैंक भरने की पद्धति : खाद सामग्री पूरी तरह एकत्र करने के बाद नीचे बताये क्रम में टंकी भरी जाती है। (क्रम में बदलाव नहीं आना चाहिए।) जिस तरह अचार डाला जाता है, उसी तरह नाडेप पद्धति से खाद सामग्री एक ही दिन में ज्यादा से ज्यादा 48 घंटे में पूरी तरह टंकी में भरकर सील कर दी जाती है। आधा काम छोड़ देंगे तो कम्पोस्ट खाद बनने की प्रक्रिया में बाधा आयेगी।

प्रथम भराई : टंकी भरने का काम शुरू करने के पहले अंदर की दीवार एवं फर्श पर गोबर–पानी का घोल छिड़ककर अच्छा गीला कर लिया जाता है।

पहली परत : पहले 6 इंच ऊँचाई तक वानस्पति पदार्थ से भर दें। इसमे 30 घनफुट से 100 से 110 किलो सामग्री आती है।

दूसरी परत : गोबर का घोल–125 से 150 लीटर पानी में 4 किलो गोबर घोलकर पहली परत पर इस प्रकार छिड़कना चाहिए कि पूरी वनस्पति स्तर अच्छी तरह भीग जाए। गर्मी के मौसम में पानी की मात्रा अधिक रखा जाना चाहिए। गोबर की जगह गोबर गैस स्लरी लेना हो तो ढाई गुना (10 लीटर) ली जाती है।

तीसरी परत : साफ सूखी छनी मिट्टी–भीगी हुई वानस्पतिक परत पर वनस्पति के वजन की 50 प्रतिशत अर्थात 50 से 60 किलो मिट्टी समतल बिछा दी जाती है। टंकी को इस प्रकार तीन परतों के क्रम से टैंक से ऊपर करीब डेढ़ फुट ऊँचाई तक झोपड़ीनुमा आकार में भरते जाना चाहिये। साधारणतया 11 से 12 तहों में टंकी भर जाएगी। अब भरे टैंक को सील कर दिया जाता है। भरी सामग्री के ऊपर 3 इंच की मिट्टी (400 से 500 कि.ग्रा.) की तह जमा दी जाती है और उसे गोबर के मिश्रण से व्यवस्थित रूप से लीप दिया जाता है। इस पर दारारें पड़ने पर पुनः लीपा जाता है।

दूसरी भराई : 15 से 20 दिन में खाद सामग्री सिकुड़ कर टैंक के ऊपरी स्तर से अन्दर (नीचे) दब जाएगी, तब मिट्टी का थर न हटाते हुए पहली भराई की तरह वानस्पतिक पदार्थ, गोबर घोल और छनी मिट्टी की परतों से पुनः टांके की सतह से 1.5 फुट ऊँचाई तक पहले जैसा ही भरकर 3 इंच की मिट्टी परत देकर लीपकर सील कर दिया जाता है।

दक्षता : नाडेप कम्पोस्ट परिपक्व होने में पहली भराई की तारीख से 90 से 120 दिन लगते हैं। इस पूरे समय में खाद की आर्द्रता बनी रहने के लिए और दरारें बंद करने के लिए गोबर–पानी की छिड़काव करते रहना चाहिए। आवश्यक लगे तो दीवार के छिद्रों से पानी छिड़कना चाहिए। ऊपर की सतह पर घास उगने पर उसे निकाल देना चाहिये, यदि कड़ी धूप हो तो उस पर घास फूस की चटाई से छाया करना आवश्यक है।

खाद की परिपक्वता : तीन–चार महीने में खाद गहरे भूरे रंग की बन जाती है और सब दुर्गन्ध समाप्त होकर एक अच्छी खुशबू आती है। खाद सूखना चाहिए। इसमें 15 से 20 प्रतिशत नमी रहनी चाहिए। इस खाद को एक फुट में 35 तारवाली छलनी से छलनी आड़ी रखकर छान लेना चाहिए। छनी हुई नाडेप कम्पोस्ट खाद उपयोग में लानी चाहिए और छलनी के ऊपर का अर्ध पका अथवा कच्चा माल फिर से खाद बनाते समय वानस्पितिक पदार्थ के साथ उपयोग में लाना चाहिए। इस टैंक से साधारणतया 160 से 175 घनफुट छनी खाद और 40 से 50 घनफुट कच्चा माल मिलेगा। साधारणतया इसका वजन तीन–सवा तीन टन होता है।

ठीक से पकी हुई खाद में सामान्यत : नाइट्रोजन 0.5 पतिशत, फास्फोरस 0.5–0.6 प्रतिशत व पौटैशियम 1.2 से 1.4 प्रतिशत होता है। इसके अलावा इसमें सोलह प्रकार के सूक्ष्म द्रव्य प्रचुर मात्रा में होते हैं। यह मिट्टी को अच्छा ह्यूमस प्रदान करता है।

नाडेप पद्धति से फास्फो कम्पोस्ट : स्फुर (फास्फोरस) की उपलब्धता बढ़ाने के लिए गड्ढों टाका भरते समय प्रति टन पदार्थ में 50 कि.ग्रा. राक फास्फेट का उपयोग भी किया जा सकता है। पी. एस. एम. जीवाणु से रॉक फास्फेट को घुलनशील बनाकर स्फुर का प्रतिशत बढ़ाया जा सकता है। पी. एस. एम. का संवर्धन खेत में अवस्थित, अनुपलब्ध व अघुलनशील फास्फेट को घुलनशील करने में सहायक होगा। एजोटोबैक्टर से खाद में नाइट्रोजन स्थिरीकरण भी अधिक होगी और इसकी बढ़वार से खेत मे नत्रजन स्थिरीकरण में भी सहायता मिलेगी।

III. ढ़ेर पद्धति : इस पद्धति में पेड़ की छाँव में करीब 1 फुट गहरी व 7 फीट लम्बी नाली खोदी जाती है। इस पर पाँच फीट तक (दोनों तरफ से 1 फुट छोड़कर) लकड़ी की डंठलें बिछाई जाती हैं, ताकि ढ़ेर में नीचे से हवा का वहन हो सके। इस पर **5 x 5** फीट के आकार का मिश्रित कचरे का ढ़ेर बनाया जाता है। कचरे का एक थर 6''–8'' तक मोटा होता है। इस पर गोबर पानी छिड़का जाता है और इस पर 2''–3'' मोटा मिट्टी का थर दिया जाता है। इस प्रकार एक ढ़ेर में करीब 5–6 कचरे के थर दिये जाते हैं। ढ़ेर की ऊँचाई पाँच फीट तक हो जाने पर पूरे ढेर को ऊपर से नीचे तक मिट्टी से ढ़क कर मिट्टी व गोबर के गाढ़े घोल से प्लास्टर कर दिया जाता है। ढ़ेर को नियमित पानी देकर फिर जूट के बोरे से ढ़क दिया जाता है। इस पद्धति में करीब 60–90 दिन में खाद तैयार हो जाती है। इस ढ़ेर पर प्रथम 30 दिन बाद सब्जियाँ व फूल लगाने के सफल प्रयोग भी किये गये हैं। सब्जियों व फूलों का उत्पादन अच्छा पाया गया है।

IV. हरी खाद : भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने तथा भौतिक दशा सुधारने के उद्देश्य से जीवित हरे पौधों की अथवा पौधों के किसी अंग को खेत में पलट कर सड़ा दिया जाता है। इसी को हरी खाद कहते हैं। इरी खाद दो प्रकार से ली जाती है– (1) खेत में रही खाद उगाकर पलट दें। (2) अन्यत्र उगाये गये पेड़ पौधों की हरी पत्तियाँ तथा मुलायम शाखाएँ काटकर, उन्हें खेत में डालकर मिट्टी में दबा दें।

हरी खाद के लाभ : (1) भूमि को जीवांश पदार्थ मिलता है। (2) भूमि की भौतिक एवं रासायनिक दशा सुधरती है। (3) हरी खाद भूमि की निचली सतहों से पोषक तत्व खींचकर ऊपरी सतह पर लाती है, जिससे आगे उगाई जाने वाली फसलें लाभान्वित होती है। (4) भूमि में जल शोषण बढ़ता है। भूमि का कटाव रूकता है। (5) हरी खाद के पौधे पोषक तत्वों को अपने अन्दर रोकते हैं, जिससे रिसाव द्वारा पोषक तत्वों का ह्रास नहीं होता है। (6) दलहनी वर्ग के हरी खाद के पौधों की जड़ों में पायी जाने वाली राइजोबियम बैक्टीरिया वातावरण से नाइट्रोजन को भूमि में संस्थापित करते हैं। (7) हरी खाद से पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ती है। (8) हरी खाद सबसे सस्ती होती है।

हरी खाद के लिए प्रयुक्त होने वाली फसले :

फसल	बीज की मात्रा (कि.ग्रा./हे.)	पलटाई का समय	प्रति हेक्टेयर संस्थापित नाइट्रोजन (किग्रा)
1. सनई	90–100	42 दिन पर	82
2. ढैंचा	25–30	42 दिन पर	76
3. मूंग	20–25	65 दिन पर फली तोड़ने के बाद	38
4. उर्द	25–30	85 से 90 दिन पर फली तोड़ने के बाद	42
5. लोबिया (चारा)	35–40	60 दिन पर	55

हरी खाद द्वारा मृदा को प्रदान किये जाने वाले पोषक त्तव :

क्र.सं.	पोषक तत्व	मात्रा किग्रा./हे.	क्र.सं.	पोषक तत्व	मात्रा (पी.पी.एम)/हे.
1.	नत्रजन	26.2	7.	जस्ता (ज़िंक)	25
2.	स्फुर (फास्फोरस)	7.3	8.	लोहा	105
3.	पोटाश	17.8	9.	मैंग्नीज	39
4.	गंधक	20	10	ताँबा	7
5.	चूना (कैल्शियम)	1.4			
6.	मैग्नीशियम	1.6			

V. सूक्ष्म जीवाणु कम्पोस्ट : भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा विकसित सूक्ष्म जीवाणुओं के इस कम्पोस्ट को बनाने की विधिः

1. यह विधि धान के पुआल (पैरा) गन्ने की खोई और पत्तियों से कम्पोस्ट बनाने हेतु उपयोगी है।
2. कचरे के टुकड़े (सामग्री) 5–6 से.मी. होना चाहिए।
3. खाद के गढडे की क्षमता 200 घन फीट होना चाहिए। 12 फीट लम्बाई, 6 फीट चौड़ाई, 3 फीट गहराई होनी चाहिए।
4. कम्पोस्ट खाद बनाने के लिए निम्न सामग्री आवश्यक हैः

(अ) फफूंद कल्चर : उपयोगी कल्चर में ट्रायकरस स्पायरेलिस, पेंसिलोमाइस, फ्यूजीस्पेरस, एस्परजिलस, आवामोरी, पेनिसिलियम्, डीजीटेटेस, ट्राइकोडर्मा विरीडी प्रजातियाँ हैं। प्रति 100 किलोग्राम खाद सामग्री हेतु आधा किलो कल्चर आवश्यक है।

(आ) अगर उपरोक्त कल्चर उपलब्ध न हो तो विकल्प के रूप में कम्पोस्टिंग सामग्री में एक तिहाई के बराबर पशुओं का ताजा गोबर मिलायें। यह सक्षमता से फफूंद कल्चर के बराबर कम्पोस्टिंग कार्य में प्रभावी होगा।

(इ) स्फूर घोल जीवाणु (एस्परजीलस अवामोरी) 250 ग्राम प्रति 100 किलोग्राम कम्पोस्टिंग सामग्री।

(ई) नत्रजन स्थिरीकरण के जीवाणु– एज़ोटोबैक्टर कूकोकम 250 ग्राम प्रति 100 किलोग्राम कम्पोस्टिंग सामग्री।

(उ) रॉक फास्फेट चूर्ण – 5 प्रतिशत मात्रा।

(ऊ) बगीचे की ह्यूमस युक्त मिट्टी 4.5 किलोग्राम प्रति 100 किलो।

(ए) यूरिया 1.5 किलोग्राम प्रति 100 किलो ग्राम सामग्री।

5. एज़ोटोबैक्टर छोड़कर शेष सभी जीवाणु कल्चर दो बाल्टी पानी में अच्छी तरह घोलकर कम्पोस्टिंग नवस्पति पर छिड़कें।
6. अगर कल्चर नहीं है तो उसके स्थान पर गोबर में घोलकर कम्पोस्टिंग वनस्पति पर छिड़कें।
7. गोबर घोल में रॉक फास्फेट और मिट्टी भी मिलायें।
8. उपरोक्त सभी सामग्री मिलाकर पानी मिलायें, जिससे सामग्री 60–70 प्रतिशत नम हो जाय।
9 इस प्रकार उपचारित सामग्री गढ्डे में भरें।
10. 15 दिन के अन्तराल पर पलटाई करें। आवश्यकतानुसार पानी भी मिलायें, जिससे वांछित नमी बनी रहे।
11. दूसरी पलटाई (एक माह की अवस्था में) के समय एज़ोटोबैक्टर भी मिलायें।
12. इस प्रकार 200 घनफीट सामग्री एक साथ सभी मिलाने के बजाय गढ्डे में सामग्री परतों में भी बिछाई जा सकती है। सब से नीचले तल में 15 से. मी. जैविक कल्चर/वनस्पति सामग्री की तह जमायें। सूखा जीवाणुं कल्चर, गोबर पानी, मिट्टी और रॉक फास्फेट इस तह पर अनुपातिक मात्रा में फैलायें और पानी का पर्याप्त छिड़काव करें, इस प्रकार क्रिया दोहराइयें, जिससे पूर्ण गढ्डा भर जाये। सबसे ऊपरी तह भी जैविक कचरे की होगी तथा 15 दिन के अन्तराल पर चार बार पलटें।

13. लगभग 90 दिन (तीन माह) में कम्पोस्ट पककर तैयार होगा।

VI. फास्फो कम्पोस्ट पद्धति : फास्फोकम्पोस्ट एक जैविक एवं प्राकृतिक खाद है। इसका निर्माण फसल अवशेषों, पशुओं के गोबर, मूत्र एवं अन्य प्रकार के कार्बनिक अवशेषों का उपयोग कर के किया जाता है। इन कार्बनिक अवशेषों में रॉक फास्फेट तथा पाईराइट जैसे खनिज पदार्थों को मिलाकर तथा सूक्ष्म जीवियों के निवेश के माध्यम से अघुलनशील तत्वों को घुलनशील रूप में बदला जाता है। ये तत्व पेड़–पौधों को आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं।

फास्फो कम्पोस्ट बनाने की विधि : यद्यपि किसान खेतों में कम्पोस्ट खाद का प्रयोग आदिकाल से करते चले आ रहे हैं, लेकिन पारम्परिक विधि से बनाई गई कम्पोस्ट में नाइट्रोजन एवं फास्फोरस की मात्रा बहुत कम, अर्थात् क्रमशः 0.5 तथा 0.25 प्रतिशत होती है, जबकि फास्फो कम्पोस्ट में इसकी मात्रा 2 से 8 गुना अधिक होती है। फास्फो कम्पोस्ट बनाने के लिए 2.5 मीटर चौड़े, 1.0 मीटर गहरे तथा कार्बनिक पदार्थ की उपलब्धता के आधार पर आवश्यकतानुसार लम्बाई के गढ्डे कुछ ऊंचे स्थान पर जहाँ बरसात का पानी न रूकता हो, बनाना चाहिए।यदि गढ्डे पक्के हों तो अच्छा होगा, क्योंकि पक्के गढ्डों में पोषक तत्वों की निक्षालन क्रिया द्वारा हानि नहीं होती है।

फास्फो कम्पोस्ट के लिए निम्न सामग्री की आवश्यकता होती है :

सामग्री	मात्रा
1. कार्बनिक पदार्थ (जैविक अवशेष)	1120 किलाग्राम
2. पशु गोबर	120 किलाग्राम
3. खेत की ऊपरी मिट्टी	7 किलाग्राम
4. सड़ी गोबर की खाद	7 किलाग्राम
5. रॉक फास्फेट	175 किलाग्राम
6. पानी	700–800 लीटर
7. पी. एस. एम.	500 ग्राम

गढ्डा भराई : कार्बनिक पदार्थों या फसल अवशेषों को सर्वप्रथम गढ्डे में 3–4 इंच मोटाई में बिछा दिया जाता है। इसके ऊपर फॉस्फेट रॉक, गोबर की खाद, मिट्टी तथा सूक्षम जीवाणुओं के मिश्रण का घोल छिड़काव किया जाता है। तत्पश्चात् कार्बनिक पदार्थ की एक दूसरी परत बिछाई जाती है। इसके ऊपर फिर सूक्ष्म जीवाणुओं तथा फास्फेट रॉक आदि के मिश्रण को फैला दिया जाता है। इस प्रकार एक परत कार्बनिक पदार्थ की तथा दूसरी सूक्ष्म जीवाणुओं के मिश्रण की लगाकर गढ्डा पूरा भर दिया जाता है। गढ्डों की भराई में कार्बनिक पदार्थ, गोबर खाद, मिट्टी तथा कम्पोस्ट क्रमशः 8:1:0.5:0.5 के अनुपात में भरी जाती है। इस सम्पूर्ण मिश्रण में फास्फेट रॉक की मात्रा 12.5 प्रतिशत के आधार पर मिलाई जाती है। सूक्ष्म जीवाणुओं का प्रयोग 0.5 किलोग्राम प्रति टन के अनुपात में किया जाता है। नाइट्रोजन अधिकता वाली फास्फो कम्पोट बनाने के लिए पाइराइट (10 प्रतिशत के आधार पर) तथा यूरिया (एक प्रतिशत भार के आधार पर) का प्रयोग किया जाता है।

इस बात का विशेष ध्यान दिया जाता है कि कार्बनिक पदार्थ में नमी की मात्रा 50 से 60 प्रतिशत होनी चाहिए। गढ्डे को कार्बनिक पदार्थ से भरने के पश्चात् प्लास्टिक या गीली मिट्टी के लेप से ढ़क दिया जाता है।

ढ़ेर की पलटाई : आवश्यक सूक्ष्म जैविक प्रक्रिया के लिए ढ़ेर की पंलटाई 15 दिन के अन्तराल पर करते रहते रहना चाहिए। कम्पोस्ट के गढ्डों में प्रयोग किये गये पदार्थों की पलटाई के पूर्व पानी छिड़काव करना आवश्यक है, जिससे नमी का मात्रा 50 से 60 प्रतिशत से कम न हो जाए। लगभग 14 से 15 दिनों के अंतराल पर सम्पूर्ण मिश्रण को 3 से 4 बार पलटना चाहिए। इस दरम्यान उसमें उचित नमी को यथावत बनाए रखना चाहिए। इस प्रकार 3 से 4 महीने में फॉस्फोरस से भरपूर पूर्णतः पकी हुई तथा खेतों में प्रयोग हेतु फास्फो कम्पोस्ट तैयार हो जाती है।

रखरखाव : तीन से 5 माह बाद इस पकी हुई खाद को गढ्डे में से निकालकर हवादार स्थान पर छाया में सुखा लें। यह ध्यान में रहे कि इसमें 30 से 40 प्रतिशत से अधिक नमी नहीं होनी चाहिए। तत्पश्चात् पॉलीथिन के बोरों में (50 कि.ग्रा.) भर कर भंडारित कर लें। इसका फॉस्फोरस उर्वरक के विलल्प के रूप में प्रयोग करना लाभकारी सिद्ध हुआ है।

फॉस्फो कम्पोस्ट की रासायनिक संरचना : साधारण कम्पोस्ट जैसे गोबर की खाद, बायोगैस स्लरी तथा केंचुओं की खाद की तुलना में फॉस्फो कम्पोस्ट तथा नाइट्रोजन अधिकता वाली फॉस्फो कम्पोस्ट में नाइट्रोजन सिट्रेट घुलनंशील फास्फोरस की मात्रा अधिक होती है। फॉस्फो कम्पोस्ट की रासायनिक संरचना को निम्न तालिका में दर्शाया गया है :

क्र.सं. खाद	नाइट्रोजन%	फास्फेट%	कार्बन–नाई. –अनुपात	सिट्रेट विलेयक फा. %
1. साधारण कम्पोस्ट	0.8	0.55	25.0	0.05
2. गोबर की खाद	0.7	0.75	22.0	0.06
3. केंचुओं की खाद	1.3	0.50	19.0	0.05
4. बायोगैस स्लरी	0.9	0.70	23.0	0.08
5. फॉस्फो कम्पोस्ट (12.5% रॉक फास्फेट)	1.2	4.70	17.2	1.15
6. नाइट्रोजन अधिकता वाली फॉस्फो कम्पोस्ट (25: रॉक फास्फेट)	1.9	7.10	14.8	1.80

फॉस्फो कम्पोस्ट का महत्व : फॉस्फो कम्पोस्ट का परीक्षण विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों तथा मिट्टी पर अनेक फसलों के साथ किया गया। इन परीक्षणों से यह सत्यापित होता है कि समान मात्रा में फॉस्फोरस की आपूर्ति अगर सिंगल सूपर फोस्फेट अथवा फॉस्फो कम्पोस्ट के माध्यम से की जाती है, तो फसलों की पैदावार समान प्राप्त होती है।

अतिरिक्त कार्बनिक खाद तैयार करने की पद्धतियाँ एवं रीतियाँ

डॉ0 थामस अब्राहम
प्राध्यापक (शस्य विज्ञान) *शियाट्स इलाहाबाद*]

जैविक या कार्बनिक खाद वे प्राकृतिक खादें हैं जिनको पौधों या मनुष्यों के अपशिष्ट पदार्थो से तैयार करते हैं। इनका प्रभाव देर से होता है, परन्तु एक बार प्रयोग करने के बाद वह काफी समय तक बना रहता है। ये खादें हयूमस की मात्रा में वृद्धि करती हैं। फलस्वरूप भूमि की जलधारण क्षमता में वृद्धि होती है। इसमें पौधों के उपयोग में आने वाले सभी तत्व पाए जातें हैं, भले ही उनकी मात्रा कम हो। यह भूमि में पोषक तत्वों की वृद्धि करने के साथ–साथ मृदा संरचना को भी सुधारती है। रासायनिक खादों की तरह इसकी अधिक मात्रा पौधो व भूमि को नुक्सान न पहुँचाते हुए पोषक तत्वों का प्राकृतिक संतुलन बनाए रखती है।

I. गोबर की खाद या कम्पोस्ट : इस प्रकार की खाद पेड़ – पौधों की पत्तियों, जड़ों या अन्य किसी प्रकार के अवशेषों या मल, कूड़ा–कचरा एवं अन्य बेकार चीजों को खाद के ढ़ेर में रखकर सड़ाने–गलाने से बनती है। इस क्रिया में पोषक तत्व इस रूप में बदल जाते हैं कि पौधे आसानी से उन्हें ग्रहण कर सकें। कम्पोस्ट खाद तैयार करते समय इतनी गर्मी पैदा होती है कि मल–मूत्र, कूड़ा–कचरा, गंदा पानी आदि में रहने वाले हानिकारक रोगाणु मर जाते हैं तथा निरापद एवं गंधरहित उत्तम खाद तैयार होती है। कम्पोस्ट खाद को तैयार करने की इंदौर विधि में सड़े–गलाने की क्रिया वायुजीवी जीवाणुओं द्वारा होती है, जबकि बंगलौर विधि में वायुजीवी एवं अवायुजीवी दोनों प्रकार के जीवाणु कार्य करते हैं।

(क) इंदौर विधि : वनस्पतिक अवशेषों की 15 सेंटीमीटर मोटी परतें, एक के ऊपर एक रखते हुए करीब 1 मीटर ऊँची ढेरी तैयार कर लेते हैं तथा इस सामग्री को मिलाकर पशुओं के पैरों के पास डाल देते हैं। अगले दिन गोबर एवं मूत्र से सनी सामग्री को 1 मीटर लम्बे व 2.5 मीटर चौड़े गढ़डों मे डाल देते हैं। तीन–चार बार खाद सामग्री को 15–15 दिन के अंतर पर उलट कर फिर इसमें पानी डाल देते हैं। इस प्रकार की खाद लगभग 3–4 माह में तैयार होती है । इसमें निम्न कमियॉ हैं

1. इस विधि से कम्पोस्ट खाद तैयार करने में बहुत मेहनत करनी पड़ती है।
2. खाद का ढ़ेर तैयार करने, खाद सामग्री के विभिन्न घटकों को यथानुपात रखने तथा खाद सामग्री को उलट– पलट में बड़ी सावधानी बरतनी होती है।
3. यह विधि कम वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त नहीं है।
4. इस विधि से तैयार खाद हल्की होती है, जिसमें नाइट्रोजन एवं जैव पदार्थ की मात्रा कम होती है।

(ख) बंगलौर विधि : एक मीटर गहरी व 2.5 मीटर चौड़ी खाइयों में इंदौर विधि की तरह ही बिचाली को पशुओं के गोबर मूत्र से सानकर भरते हैं। इस विधि में पहले 7–8 दिनों तक वायुजीवी जीवाणु अपघटक क्रिया करते हैं। तथा उसके पश्चात अवायुजीवी जीवाणु अपना कार्य करते हैं। इस विधि में खाद सामग्री की ऊपर से मिट्टी के गारे से पुताई करते हैं, जिससे नमी कम नही होती है, एवं सड़ने –गलने की क्रिया भीतर चलती रहती है। इस विधि से तैयार खाद में इंदौर विधि की अपेक्षा नाइट्रोजन एवं जैव पदार्थ अधिक मात्रा में होते हैं।

II. वर्मीकम्पोस्ट

केचुओं को 'किसानों का मित्र', प्रकृति के हल जोतने वाले', 'भूमि का पेट', 'उर्वरता संकेतक', इत्यादि नाम से जाना जाता है। जाने माने वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन ने केंचुओं को सबसे महत्वपूर्ण जीवी का श्रेय दिया था। केचुओं की, विशेषतः पाचन क्रिया द्वारा कार्बनिक पदार्थों का सड़ाना तथा उर्वरकों को सरल एवं सुलभ रूप देने को विशेषता इनको बहुउपयोगी खाद उत्पादक बनाते हैं।

मिट्टी की उपरी तल या सतह में पायी जाने वाली (इपीजेइक) तथा कम गहराई पर पाये जाने वाली (एनिइक्स) वर्ग के कुछं केचुएं – *पेरियोनिक्स एक्सकेवेटस, लैम्पिटो मौरिषिआई* जो कि आमतौर से हमारे मिट्टी में पायी जाती है, का प्रयोग कर वर्मीकम्पोस्ट अर्थात 'केचुआ खाद' बनाया जा सकता है।

वर्मीकम्पोस्ट के लिये कुंचुओं का सम्वर्धन आवश्यक है। केचुओं की पैदाइश तथा घनी आबादी बनाये रखते हुये सेंद्रिय पदार्थों का उर्वरक में रूपातंरण कृत्रिम रूप से जब करते हैं तो उसे केंचुआ संखाद निर्माण पद्धति कहते हैं।

केंचुआ कूड़ा खाद पद्धति की विशेषतायें:

(i) यह खाद ह्यूमस से समृद्ध होती है, तथा पौधों के लिये उपयोगी सभी पोषक तत्वों से भरपूर होती है। अन्य कार्बनिक खाद की अपेक्षा सूक्ष्म तत्व, नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश क्रमशः 3, 5, 7, 11 गुणा अधिक है।

(ii) यह खाद उपयुक्त जीवाणुओं की विशाल संख्या से भरी होती है, इसलिये यह जमीन की प्राकृतिक उर्वरता में वृद्धि करती है।

(iii) इस पद्धति से केंचुओं की संख्या में वृद्धि होती है जिससें उर्वरता का स्रोत बढ़ जाता है।

(iv) केंचुओं की शरीर का 60. प्रतिशत हिस्सा (शुष्क पदार्थ) प्रोटीन से बना होता है, अतः यह पर्यावरण में संतुलन लाते हैं।

सूचारू रूप से केंचुआ खाद की उत्पादन हेतु आवश्यक बिन्दु इस प्रकार है :

स्थानीय केंचुए एकत्रित करना : अच्छी तरह नम एवं विसर्जन वस्तु पायं जाने वाले स्थानों के निकट केंचुए बहुतायत से पाये जाते हैं। ऐसी जगह पर एक वर्ग मी0 को चिन्हित कर 1 ली0 पानी में 50 ग्राम गुड़ का चूरा तथा 50 ग्राम ताजा गाय का गोबर मिल हुआ मिश्रण छिड़क दें तथा उस पर पत्तियों की परत बनाने के पश्चात् एक बोरे या पुराने कपड़े से ढक दें। इस पर नियमित रूप से हल्का पानी का छिड़काव करते रहें। लगभग दो सप्ताह की अवधि में केंचुए इकट्ठे हो जायेंगे। इन केंचुओं को इसी मिट्टी की कुछ मात्रा के साथ एकत्रित करें।

धारक गड्ढे या पात्र का चुनाव : जैविक संबर्धन आरंभ केंचुआ शय्या या 'वर्मीबेड' बनाकर किया जाता है। ढाई से तीन फीट गहरा, 3 फीट चौड़ा तथा 6 से 8 फीट लम्बे गड्ढे में अथवा लकड़ी की पेटी, प्लास्टिक की बाल्टी, ड्रम या क्रेट, ईंट तथा कंक्रीट द्वारा बनाई गयी टंकी का प्रयोग किया जहा सकता है। लगभग 2–3 कि0ग्रा0 कचरा प्रतिदिन प्रयोग में लाने के लिए **3x2x1** फीट वाला पात्र/धारक पर्याप्त है।

स्थल का चयन : केंचुआ संवर्धन के लिये स्थल चुनते समय यह ध्यान रखें कि वह छायादार, जल निकास की प्रबन्ध तथा ढलवा जगह पर हो। जल भराव तथा अत्यधिक गर्म होने वाले स्थानों का चुनाव न करें।

केंचुआ शय्या का निर्माण : केंचुआ शय्या विभिन्न पदार्थों, जो कि सबसे उचित परिस्थिति को बनाये रखने में सहायक हों, से निर्मित होता है। सबसे निचली सतह ईंट के टुकडे, कंकड़ – रोड़े तथा उन पर 2 से 2.5 इंच बालू की सतह से बनायी जाती है। इससे जल निकासी की व्यवस्था पूरी होती है। इसके ऊपर लगभग 6 से 8 इंच भारी या चिकनी मिट्टी की सतह दी जाती है। गोबर के

छोटे–छोटे ढेरों को इस सतह पर बिछाने के बाद लगभग 10 से 15 दिन इसको झाड़–पात से ढ़कें रखें तथा नियमित रूप स`नम बना रहने दें।

केंचुओं का प्रयोग : स्थानीय केंचुए तथा कुछ मात्रा में मिट्टी जिसे एकत्रित किया गया है, को इस प्रकार के तैयार किये गये शय्य में ढांके हुये वस्तुओ को हटाकर प्रस्तुत या प्रयोग करें। उसे कचरे की 2 या 3 इंच सतह से ढ़क दिया जाय तथा पर्याप्त मात्रा में पानी छिड़कें ताकि 50 से 55 प्रतिशत नमी बनी रहे। इस प्रकार लगभग 30 दिन तक का समय केंचुएं इस अलग परिस्थिति में अनुकूलित हो जायेंगे। इस अवधि के दौरान शिशु केंचुओं की उपस्थिति अच्छा लक्षण है।

केंचुआ शय्या का पोषण : केंचुआ शय्या का पोषण तीस दिनों के उपरांत आरंभ करना चाहिये। उचित यह होगा कि कचरे को सीधा प्रयोग न करके किसी और गड्ढ़े में 7 से 10 दिन तक आंशिक रूप से सड़ाने के बाद प्रयोग करने से अधिक तापमान से केंचुओं को क्षति नहीं पहुंचेगी। सेंद्रिय पदार्थों (आंशिक रूप से सड़ा हुआ) की 2 से 3 इंच की परत प्रतिदिन डालें। सप्ताह में तीन या चार बार पदार्थों को अवश्य डालें तथा नमी बनाये रखने का विशेष ध्यान दें। पात्र, गड्ढा या ड्रम जब भर जाये तो और पदार्थ डालना बन्द कर दें। अधिक मात्रा में कचरा उपलब्ध हो तो और गड्ढे, पात्र इत्यादि को तैयार कर इस प्रक्रिया का पालन करें।

केंचुआ खाद या वर्मीकम्पोस्ट का निर्माण : उचित एवं अनुकूल परिस्थितियों में केंचुओं की कार्यकुशलता मे वृद्धि होगी तथा खाद बनने की प्रक्रिया बनी रहेगी। खाद बनने की प्रक्रिया आरंभ हाने पर कार्बनिक पदार्थ नरम, स्पंज जैसा, ताजा नम मिट्टी की सुगंध वाला, गहरे भूरे रंग में परिवर्तित होने लगता है। जब तक सम्पूर्ण पात्र या गड्ढा का पदार्थ खाद में बदल न जाये, आवश्यकता अनुसार नमी बनायें रखें।

केंचुआ खाद को इकठ्ठा करना : सेंद्रिय पदार्थों की पूरी तरह से खाद में बदल जाने के बाद पानी डालना बन्द करें ताकि केंचुए नीचे की तरफ जाने में बाध्य हों। तैयार हुई खाद को एकत्रित कर छोटी–छोटी ढेरियों प्लास्टिक की पन्नी पर या कड़ी जमीन पर तेज धूप में शंक के आकार में बनायी जायें केंचुए निचली ओर जायें। तत्पश्चात् खाद को 2–3 सूत वाली छलनी प्रयोग कर छानें।

केंचुआ खाद का संग्रहण या भण्डारण : छाने गये खाद को छायादार जगह में सुखाकर इसको बोरी, पॉलिथीन थैलियां, ड्रम इत्यादि में सुरक्षित भण्डारण करें।

छलनी के ऊपर आये हुये छोटे केंचुए तथा 'ककून' (अण्डा) को सही प्रकार निर्मित शय्या पर प्रस्तुत/प्रयोग करें, जिससे और भी केंचुआ संवर्धन इकाई बन सकती है। इसका विपणन कर कुछ लाभ भी कमाया जा सकता है।

सावधानियां : कुछ सावधानियों को बरतना आवश्यक है, क्योंकि केंचुए बहुत अधिक संवेदनशील नहीं होते।

(i) शय्या को कभी भी प्लास्टिक से नहीं ढांके।

(ii) शय्या को सेंद्रिय पदार्थों से बहुत अधिक न भरें। तीन इंच से अधिक परत ज्यादा गर्मी पैदा करेगी।

(iii) तेज गंध वाले तथा अम्लीय पदार्थ जैसे प्याज, टमाटर, नीबू, इत्यादि को हमेशा आंशिक सड़न के बाद ही प्रयोग करें।

(iv) जलांश या नमी (35 से 40 प्रतिशत) की मात्रा अत्यधिक या बहुत कम नहीं होनी चाहिये।

(v) चींटिया, चूहे, छछून्दर इत्यादि से सुरक्षा प्रदान करें।

(क) एक ली0 पानी में मिर्च, हल्दी, नमक (सभी 5 ग्राम पावडर) के मिश्रण को इकाई के चारों ओर आवश्यकतानुसार छिड़का जा सकता है।

(ख) नीम तेल (0.5 प्रतिशत) का घोल (5 मी0 ली0 प्रति ली0 पानी) भी उपयोगी पया गया है।

(ग) क्रेट, पेटी, इत्यादि को जमीन से थोड़ी ऊचाई (एक फुट) पर रखें

केंचुआ खाद में पाये जाने वाले तत्व एवं अन्य गुण :

1.	नाइट्रोजन	:	1.25 से 2.5 प्रतिशत
2.	फास्फोरस	:	0.75 से 1.6 प्रतिशत
3.	पोटाश	:	0.5 से 1.1 प्रतिशत
4.	कैल्शियम	:	3.0 से 4.0 प्रतिशत
5.	मैग्नीशियम	:	3.0 से 4.0 प्रतिशत
6.	सल्फर	:	13 पी.पी.एम.
7.	लोहा	:	45 से 50 पी.पी.एम.
8.	जस्ता	:	20 से 50 पी.पी.एम.
9.	ताँबा	:	4 से 5 पी.पी.एम.
10.	मैंगनीज	:	60 से 70 पी.पी.एम.
11.	पी.एच.	:	7 से 7.80
12.	कार्बन नाइट्रोजन अनुपात	:	12:1

(स्रोत : श्री जटाशंकर, सु0 शो0 सं0)

III. वर्मीवाश

वर्मीवाश की इकाई या बड़ी बाल्टी, नॉद या बड़े गमले में आवश्यकतानुसार बनायी जा सकती है। ड्रम में वर्मीवाश बनाने की विधि निम्नलिखित है:

- ड्रम का ऊपरी हिस्सा खुला होना चाहिए। ड्रम की निचली सतह पर 1 इंच व्यास का छेद करके एक टोपी लगा दी जाये।
- सबसे नीचे की सतह पर 25–30 सेमी. ईट या पत्थर की गिट्टी बिछा दी जाये।
- गिट्टी के ऊपर 20–30 सेमी बालू या मौरग बिछा दें।
- बालू के ऊपर 30–45 सेमी दोमट मिट्टी की तह बिछा दें। इसमें : 50–60 केचुएं (इपीजेईक) डाल दिये जायें।
- मिट्टी के ऊपर गोबर के 5–6 ढेर रख दिये जायें।
- गोबर के ऊपर 5 सेमी. मोटी पुआल की तह बिछा देते हैं। प्रत्येक सतह के लगाने के बाद पानी डालें और नल की टोटी खुली रखी जाये।
- 16–20 दिन तक शाम को 5–7 लीटर पानी रोजना डाला जाये। इस प्रक्रिया के समय नल की टोटी खुली रखी जाए। इसके ऊपर प्रत्येक पर्त में 5 सेमीं पुआल या पत्ती डालते रहें।

IV. काऊ पैट पिट (सी.पी.पी.) [गाय के ताजे गोबर की खाद] : दुधारू गाय के ताजे गोबर से 2–3 माह में बनी गैर रासायनिक कम्पोस्ट खाद को सी.पी.पी. कहते हैं।

सी.पी.पी. बनाने हेतु आवश्यक सामग्रीः दुधारू गाय का 24 घंटे तक का ताजा गोबर 60 किग्रा, मुर्गी के अण्डे के छिलके का पाउडर 250 ग्राम, बेसाल्ट/ वेन्टोनाइट /वोर – स्वायल 250 ग्राम

गड्ढा बनाने हेतु: 60–70 ईट/ लकड़ी का पटरा, जूट /टाट का पुराना बोरा, बायो डायनमिक प्रिपेरेशन 502 से 507–1–1 ग्राम प्रत्येक

सी.पी.पी. खाद के लिए गड्ढा बनानाः

- 3′ लम्बा, 2′ चौड़ा तथा 1.5′ गहरा गड्ढा बनायें।
- मजबूती के लिए चारों दीवारों पर ईट /पटरा लगायें।

- गड़ढा पेडों के नीचे न बनायें तथा अच्छी उर्वरता की भूमि चुनें।
- तले में मिट्टी ही रहे कोई ईंट– मिट्टी न लगायें।

गड्ढा भरना :

1. 60 किग्रा गोबर में 250 ग्राम अण्डे के छिलके का पाउडर तथा 250 ग्राम बेसाल्ट/वेन्टोनाइट/बोर– स्वायल का बारीक पाउडर मिलायें।
2. मिश्रण को आटे की लोई की भांति 15–20 मिनट मिलायें।
3. मिश्रित गोबर को तैयार गड्ढे में डालकर समतल कर दें।
4. बी.डी. 502–507 कल्चर को अलग–अलग छिद्र में डालकर छिद्र तत्काल बन्द कर दें।
5. बी.डी. 507–को 15–20 लीटर शृद्ध पानी में 10–15 मिनट उल्टा– सीघा भंवर बनाते हुये घोलें, तत्पश्चात मिश्रित गोबर की तह पर 7 से 9 छिद्र बनाकर घोल को छिद्र में डालकर तुरन्त बन्द कर दें एवं बचे घोल को गोबर की तह पर छिड़क दें।
6. पुराने जूट/टाट के बोरे को पानी में भिगाकर साफ कर लें तथा गड्ढे को ढक दें।
7. गड्ढे में पानी न जाये इसके लिये ऊपर छप्पर बना दें।

सावधानियां :

- कम्पोस्ट में नमी बराबर रहनी चाहिये।
- धूप आदि कारणों से कम्पोस्ट सूखने लगे तो पानी छिड़क दें।
- 30–40 दिन बाद कम्पोस्ट को लकडी के डण्डे से ऊपर नीचे उलट पलट दें जिससे हवा नमी अच्छी तरह मिल जायें, पुनः बोरे से ढंक दें।

तैयार खाद का समय : जाड़े में लगभग 90 दिनों में, गर्मी में 80 दिनों में, बरसात मे 70 दिनों में खाद तैयार हो जाती है।

तैयार खाद की पहचान : तैयार कम्पोस्ट में गोबर की गन्ध नही होती वरन मीठी–मीठी खुशबू होती है।

प्रयोग विधि :

1. 500 ग्राम सी.पी.पी. को 13 लीटर पानी में धोलकर प्रति एकड़ बीज बोने से पहले छिडकें।
2. घोल बनाने के लिए प्लास्टिक/ मिट्टी के बर्तन में घड़ी की दिशा में व विपरीत भंवर बनाते हुये घोलें।
3. टाप ड्रेसिंग के रूप में भी सी.पी.पी. खाद का प्रयोग अत्यधिक लाभकारी होता है। 500 ग्राम खाद प्रति एकड 40 लीटर पानी में घोल बनाकर आवश्यकतानुसार दो तीन छिडकाव करें। छिड़काव झाड़ू, ब्रश या मशीन द्वारा किया जा सकता है।
4. बीज शोधन में 200 ग्राम सी. पी.पी. प्रति किग्रा बीज अत्यधिक लाभकारी होता है।
5. सी.पी.पी. का प्रयोग ग्राफ्टिंग, रूट डिपिंग एवं रूटिंग के लिए नर्सरी कार्यो में लाभकारी है।
6. शाकभाजी फसलों में 250–500 ग्राम प्रति एकड़ सी.पी.पी. का प्रयोग 3–4 बार करने से उपज में वृद्धि होती है। फसल की गुणवत्ता, स्वाद एवं पौषक में भी वृद्धि होती है।
7. बागानों में कटाई –छटाई के बाद पेस्ट के रूप में भी सी.पी.पी. वृहद प्रयोग किया जा सकता है।
8. नर्सरी कार्यो में पालीथीन या गमलो में सी.पी.पी. को मिट्टी में मिलाकर प्रयोग करें।

जैव उर्वरक

डा. प्रमिला गुप्ता
भू.पू. अधिष्ठात्रा, कृषि महाविद्यालय, शियाट्स इलाहाबाद

जैव उर्वरक क्यों?

रासायनिक खादों से उगाए. खाद्यान्न को खाने से बिगड़ रहे मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण में असंतुलन को देखते हुए अब ये समय आ गया है कि रासायनिक खेती को भुलाकर पूर्णतः जैविक खेती की जाए। पर्यावरण में असंतुलन का मुख्य कारण है कि पेड़ – पौधे या पषु पक्षी से हमें जो चाहिए वो हम किसी न किसी तरह प्राप्त कर लेतें है, पर हम पेड़ पौधों या पषु पक्षी की आवष्यकता नहीं पूर्ति करते हैं। रसायन के रूप में जो हम जहर का प्रयोग करते हैं वह आज हम सब के लिए खतरा बन चुका है। इसलिए जैविक खेती ही हमारे लिए एक मात्र विकल्प है।

जैव उर्वरकों के लाभः

1. जैविक उर्वरक प्रदूषण मुक्त होने के साथ ही पर्यावरण मित्र होते हैं।
2. जैविक उर्वरक सस्ते एवं सुलभ होते है जिनसे कम खर्च में अधिक से अधिक उपज आसानी से प्राप्त हो जाती हैं।
3. जैविक उर्वरक मृदा में भौतिक एवं रासायनिक गुणों में सुधार लाते है।
4. जैविक उर्वरक मृदा जनित रोगो की रोकथाम में मदद करते हैं
5. जैविक उर्वरक द्वारा वृद्धिकारक रसायनों, ग्रोथ हारमोन्स आदि का रिसाव होता है, जो पौधों की वृद्धि के लिए अधिक उपयोगी होता है।
6. जैविक उर्वरक वातावरण में उपस्थित नाइट्रोजन, पौधों को उपलब्ध कराते है।
7. जैविक उर्वरक फास्फोरस तथा पोटाष को धुलनषील करते हैं
8. जैविक उर्वरक पौधों के विकास तथा उसकी प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाते हैं।

जैव उर्वरक क्या है?

जैव – जीवित, उर्वरक – पोषक : मृदा की उर्वरकता वृद्धि में सहायक सूक्ष्म जीवों को "जैव उर्वरक" कहा जाता है। ये मृदा में पौधों के लिए आवष्यक पोषक तत्वों की उपलब्धता को आवष्यकता अनुसार बढ़ा देता है, जिससे मिट्टी अधिक उपजाऊ और टिकाऊ हो जाती है। जिस प्रकार दुध से दही बनाने के लिए सूक्ष्म जीवाणुओं की आवष्यकता होती है, ठीक उसी प्रकार जमीन की उत्पादकता बढ़ाने के लिए जीवाणुओं की अति महत्वपूर्ण भूमिका रहती है।

जैविक उर्वरक मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैः

अ. नत्रजन स्थिरकारक

1. राइजोबियम
2. एजोटोबेक्टर
3. एजोस्पाईरिलम
4. एसीटोबेक्टर
5. नील हरित शैवाल
6. एजोला/ एनाबिना

ब. फास्फोरस घोलक

स. पोटाश मोबिलाईजर

द. माइकोराईजा

जैव उर्वरको की प्रयोग विधि :

1. बीज उपचारः 50 मिली. या 200 ग्राम जैव उर्वरक आधा लीटर पानी में घोल बनाकर एक एकड़ खेत हेतु आवष्यक बीज में अच्छी तरह मिलाकर उपचार करें तथा उपचारित बीज को थोड़ी देर छाया में सुखाकर शीघ्र बुआई करें।
2. मृदा उपचारः 200 मिली. या 2 किग्रा. जैव उर्वरक को 50 किलोग्राम गोबर की खाद या मिट्टी में मिलाकर एक एकड़ खेत में बुआई के पूर्व अच्छी तरह छिड़क दें।
3. जड़ /पौध उपचारः 100 मिली. या 1 किग्रा. जैव उर्वरक को 10–15 लीटर पानी में घोल बनाकर एक एकड़ खेत हेतू पौधे के जड़ को या पौध को 15 मिनट तक डुबए, थोडी देर बाद पानी सुखने पर रोपाई करें।
4. छिड़कावः 100 मिली. या 1 किगा. जैव उर्वरक को 100 लीटर पानी में मिलाकर एक एकड़ खेत में छिड़काव करें।

जैव उर्वरक के प्रयोग में सावधानिया :

1. जैव उर्वरक को धूप व गर्मी में न रखें और न ही धुप में प्रयोग करें क्योंकि इसके जीवाणु जीवित होते हैं इनकों सूखे एवं ठण्डे स्थान पर ही भण्डारित करें।
2. जैव उर्वरक का प्रयोग रासायनिक खाद के साथ कदापि न करें।
3. यदि बीज का उपचार पूर्व में किसी रसायन जैसे बैविस्टिन आदि के साथ हुआ हो तो जैव उर्वरक की मात्रा दो गुणा कर लें।
4. फसल के अनुरूप ही जैव उर्वरक का प्रयोग करें। राईजोबियम जीवाणु फसल विषिष्ट होता है अतः पैकेट पर लिखें फसल पर ही इसका उयपोग करें।
5. जैव उर्वरक का उपयोग पैकेट पर लिखें अंतिम तिथि के पहले ही कर लें।

जैव उर्वरकः 1. राइजोबियम : राइजोबियम एक उर्वरक है जो जीवाणुओं का जैविक संगठन है। ये जीवाणु दलहनी फसलों की जड़ों में मौजूद गॉठों में सहजीवी रूप से पाए जाते हैं। ये जीवाणु अपना भोजन पौधों की जड़ से ही प्राप्त करता है और बदले में पौधों को वायु से खींच कर नाइट्रोजन देते हैं।

राइजोबियम से लाभ : राइजोबियम जीवाणु प्रति हेक्टेयर 50–100 किग्रा. नाइट्रोजन मृदा में स्थिर करते है तथा 20–30 प्रतिषत उपज में वृद्धि कराते है। इसके अतिरिक्त यह जीवाणु आने वाली फसलों में भी 25–30 किग्रा. नाइट्रोजन उपलब्ध कराते हैं।

राइजोबियम से बचत : 200 ग्राम राइजोबियम प्रति एकड़ की दर से लगभग 45–60 किग्रा. यूरिया की बचत होती है, साथ ही लगभग 20 किग्रा. नाइट्रोजन उपलब्ध होता है।

प्रभावी फसलें : सभी दलहनी फसलें ।

प्रयोग विधि : बीज उपचार ही राइजोबियम के लिए सबसे सही हैं मृदा उपचार ज्यादा प्रभावी नही होता है। क्योकि जड़ों में मौजूद गॉठों वाले जीवाणु ही नाइट्रोजन स्थिर करते हैं मिट्टी वाले नहीं। 50 मिली फार्मुलेषन को 500 मिली पानी में घोल कर 10 किग्रा. बीज उपचारित करते है। बोने के पहले छायादार स्थान पर सुखा लें।

क्रिया विधि : राइजोबियम जीवाणु जड़ में मूल रोग से प्रवेष कर संख्या में वृद्धि करते हैं। इसके फलस्वरूप जड़ों में गांठ बन जाती है। और वहीं बैक्टीरायड क्षरा वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण होता है

उपलब्धता : तरल अथवा पाउडर रूप में 200 मिली/200 ग्राम अथवा 1 लीटर/1 किग्रा. में उपलब्ध जिसमें जीवाणु संख्या $2x10^9$ प्रति मिली/ग्राम

जैव उर्वरक 2. एजोटोबेक्टर : एजोटोबेक्टर एक प्रकार के जीवाणु हैं जो पौधों के जड़ क्षेत्र में सहयोगी एवं स्वतंत्र रूप में रहकर नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर पौधों को उपलब्ध कराते हैं। फारमुलेशन 2ग10^9 बनि प्रति ग्राम उपलब्ध होता है।

एजोटोबेक्टर से लाभ : यह जीवाणु 30–40 किग्रा. नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर मृदा में स्थिर करता है। तथा 15–20 प्रतिषत उपज में वृद्धि कराता है।

एजोटोबेक्टर से बचत : 200 ग्राम एजोटोबेक्टर प्रति एकड़ की दर से 15–20 किग्रा. यूरिया की बचत होती है, साथ ही 8–10 किग्रा. नाइट्रोजन उपलब्ध होता है।

प्रभावी फसलें : दलहनी फसलों को छोड कर शेष सभी फसलों जैसे – गेहूं मक्का, धान, बाजरा, तिलहन, साग– सब्जियॉ, फल– फूल तम्बाकू, गन्ना आदि

क्रिया विधि : एजोटोबेक्टर के प्रयोग से मृदा में विटामिन, इन्डोल एसिटिक एसिड, जिबरैलिन, साईटोकाईनिन आदि का संग्रहण होता है। ट्राईकैल्सियम फास्फेट का घुलन कर फास्फेट की पौधों की उपलब्धि में भी सहाय है। इसकी उपास्थिति में अनेकों लाभदायक जीवाणुओं `जैसे– अमोनीफायर, नाईट्रीफायर, सेल्यूलोज डिकम्पोजर आदि की संख्या में वृद्धि होने से फसल की बढत में सहायता मिलती है।

जैव उर्वरक 3 : एजोस्पाईरिलम : एजोस्पाईरिलम भी एक जैविक उर्वरक है जिसके जीवाणु पौधों की जड़ो एवं जड़ क्षेत्र में सहयोगी एवं स्वतंत्र रूप में रहकर वायुमण्डल की नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर पौधो को उपलब्ध कराते हैं।

एजोस्पाईरिलम से लाभ :यह जीवाणु 30–40 किग्रा. नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर मृदा में स्थिर करता है। तथा 10–20 प्रतिषत उपज में वृद्धि कराता है।

एजोस्पाईरिलम से बचतः 200 ग्राम एजोस्पाईरिलम प्रति एकड़ की दर से 15–20 किग्रा. यूरिया की बचत होती है, साथ ही लगभग 10 किग्रा. नाइट्रोजन उपलब्ध होता है।

प्रभावी फसलें : खरीफ के मौसम में धान, मक्का, लौकी, खीरा, गन्ना आदि में विशेष उपयोगी है।

एजोटोबैक्टर / एजोस्पाइरिलम जीवाणु खाद से लाभ :

1. फसलों की 10 से 20 प्रतिशत तक पैदावार में वृद्धि होती है तथा फलों एवं सब्जियों दोनो का प्राकृतिक स्वाद बना रहता है।
2. इनके प्रयोग करने से 20–30 किग्रा. नत्रजन की बचत की जा सकती है।
3. एजोटोबैक्टर खाद कुछ वृद्धि कारक हारमोन्स जैसे जिब्रालिक एसिड तथा विटामिन बी का उर्त्सजन करते है। जिससे पौधों के विकास में सहायता मिलती है।
4. इनके प्रयेग करने से अंकुरण शीघ्र और स्वस्थ होता है। तथा जड़ों का विकास अधिक एवं शीघ्र होता है।
5. फसलें भूमि से फास्फोरस का अधिक प्रयोग कर लेती है। जिससे कल्ले अधिक बनते है।
6. इन जैव उर्वरकों के जीवाणु एन्टीबायोटिक पदार्थो को भी उत्सर्जन करते हैं जिससे पौधे की रोग प्रतिरोधी क्षमता बढती है तथा फसल का बीमारियों से बचाव होता है।
7. ऐसे जैव उर्वरकों का प्रयोग करने से जड़ों एवं तनों का अधिक विकास होता है। जिससे पौधे तेज हवा, में अधिक वर्षा एवं सूखे की स्थिति के सहने की क्षमता बढ़ जाती है।

जैव उर्वरक 4 : एसिटोबेक्टर :एसिटोबेक्टर एक प्रकार का जैविक उर्वरक है जिसके जीवाणु पौधों के जड़ो एवं जड़ क्षेत्र में सहयोगी रूप में रहकर पौधों को न उपलब्ध होने वाले नाइट्रोजन को वायु से खींचकर पौधों को उपलब्ध कराते हैं। यह मुख्य रूप से गन्ना की फसल के लिए प्रयोग किया जाता है क्योंकि एसिटोबेक्टर को जीवित रहने के लिए शर्करा की अधिक आवष्यकता होती है।

एसिटोबेक्टर से लाभ : यह जीवाणु प्रति हेक्टेयर 35–40 किग्रा. नाइट्रोजन स्थिर करता है। तथा 15–20 प्रतिषत उपज में वृद्धि कराता है। साथ ही 5–10 प्रतिषत चीनी के परता में भी वृद्धि करता है।

एसिटोबेक्टर से बचत : 200 ग्राम एसिटोबेक्टर प्रति एकड़ की दर से लगभग 15–20 किग्रा. यूरिया की बचत होती है एवं लभगभ 8–10 किग्रा. नाइट्रोजन उपलब्ध होता है।

प्रभावी फसलें : गन्ना, चुकन्दर आदि।

जैव उर्वरक 5 : नील हरित शैवाल खाद : एक कोशिकाय सूक्ष्म नील हरित शैवाल नम मिट्टी तथा स्थिर पानी में स्वतन्त्र रूप से रहते हैं। घान के खेत का वातावरण नील.हरित शैवल के लिए सर्वथा उपयुक्त होता है। इसकी वृद्धि के लिए आवष्यक ताप, प्रकाश नमी और पोषक तत्वों की मात्रा घान के खेत में विद्यमान रहती है।

प्रयोग विधि : घान की रोपाई के 3–4 दिन बाद स्थिर पानी में 12.5 किग्रा. प्रति हे. की दर से सूखे जैव उर्वरक को प्रयोग करें । इसे प्रयोग करने के पश्चात् 4–5 दिन तक खेत में पानी लगातार खेत भरा रहने दें। इसका प्रयोग कम से कम तीन वर्ष तक लगातार खेत में करें इसके बाद इससे पुनः डालने की आवश्यक नही होती है। यदि धान में किसी खरपतवार नाशी का प्रयोग किया है तो इसका प्रयोग खरपतवार नाशी के प्रयोग के 3–4 दिन बाद करें।

नील हरित जैव उर्वरक से लाभ :

1. इसके प्रयोग से 30 किग्रा./ हे. नाइट्रोजन प्राप्त होती है।
2. इसके प्रयोग से धान के उत्पादन में 15 से 20 प्रतिशत की वृद्धि होती है।
3. इसके प्रयोग से वृद्धि नियंत्राक, विटामिन–बी–12 अमीनों अम्ल श्रावित करते है जिससे पौधों में अच्छी वृद्धि के साथ–साथ दानों की गुणवत्ता भी बढती है।

जैव उर्वरक 6 : एजोला फर्न : यह ठण्डे मौसम में स्थिर पानी के ऊपर तैरते हुए पाया जाता है जो दूर से देखने मे हरे या लाल रंग की चटाईनुमा लगता है। इसकी पत्तियां बहुत मोटी होती है। इन पत्तियों के नीचे छिद्रों में सहपरजीवी साइनो– बैक्टीरिया पाया जाता है जो नत्रजन स्थिरिकरण में सहायक है। यह जलमग्न धान के खेतो में बुवाई के एक सप्ताह बाद 10 कु.प्रति हे. की दर से उगाया जा सकता है जो दो किलाग्राम नत्रजन प्रतिदिन की दर से स्थिर कर सकता है। इसका प्रयोग कम्पोस्ट बनाने में अथवा 10 टन प्रति हे. की दर से हरी खाद के रूप में भूमि में मिलाकर किया जा सकता है। इसके प्रयोग से धान में खरपतवार कम पनपते है तथा नत्रजन के प्रयोग में 40–80 किलोग्राम तक बचत की जा सकती है।

जैव उर्वरक 7. पी.एस.बी. (फास्फोरस घोलक जीवाणु) : पी.एस.बी. फास्फोरस उपलब्ध कराने वाला जैविक उर्वरक है। फास्फेटिका जीवाणु खाद स्वतन्त्र जीवी जीवाणुओं का एक नम चूर्ण रूप में उत्पाद है। नत्रजन के बाद दूसरा महत्वपूर्ण पोषक तत्व फास्फोरस है जिसे पौधे सर्वाधिक उपयोग में लाते है। सामान्यतः फास्फेटिक उर्वरकों का लगभगग एक तिहाई भाग ही पौधे अपने उपयोग में ला पाते है। शेष अधुलनशील अवस्था में ही जमीन मे ही पड़ा रह जाता है जिसे पौधे स्वयं घुलनशील नही बना पातें । जब हम यह जीवाणु युक्त ख़ाद प्रयोग करते हैं, तब मृदा में उपस्थित अधुलनशील फासफोरस को जीवाणुओं द्वारा घुलनशील अवस्था में बदल दिया जाता है। तथा इसका प्रयोग सभी फसलों में किया जा सकता है। यह जीवाणु मृदा में उपस्थित ''द्राइकैल्शियम फास्फेट'' से फास्फोरस को अलग कर पौधों को फास्फोरस उपलब्ध कराता है।

फास्फेटिका खाद से लाभः

1. फास्फेटिका जीवाणु खाद के प्रयोग से फसलों की 10 से 20 प्रतिशत तक पैदावार में वृद्धि होती है। इ
2. इसके प्रयोग करने से 25–30 किग्रा. प्रति हे. की दर से उपलब्ध फास्फेट की बचत की जा सकती है।
3. जड़ों का विकास अधिक होता है, जिससे पौधे स्वस्थ्य बने रहते हैं।

पी.एस.बी. से बचत : दो सौ ग्राम पी.एस.बी. प्रति एकड़ की दर से 15–20 किग्रा. डी.ए.पी. की बचत होती है, तथा लगभग 7 से 8 किग्रा. फास्फोरस पौधों को उपलब्ध होता है।

प्रभावी फसलेः सभी फसलों के लिए।

जैव उर्वरक 8 : माइकोराइजा : इसमें फंफूदी का पौधे की जड़ों से सहजीवन होता है, जो धरती पर उगने वाले 90 प्रतिशत पौधों में पाया जाता है फंफूदी अपनी जड़ो से पोषक तत्वों को अवशेषित करती रहती है और पौधें को इन्हें तुरन्त उपलब्ध कराती है। कवक इसके बदले भोजन पौधे से लेता है। यह दो प्रकार का होते हैंः

1. एक्टौमाइकोराइजा : जिसमें कवक पौधों की जड़ों में बाहर से परत बना लेता है और फिर इससे जड़ के अंदर हाईफा फैलाता है।
2. इन्डोमाइाकराइजा : इनमें पौधों की जड़ों में बाहर से परत नही बनती है परन्तु कवक पौधों के भीतर की कोषिकाओं में फैलकर वहीं से मृदा में जाते हैं। अधिकांशतः माइकोराईजा इसी प्रकार के होते है।

माइकोराइजा से लाभः

1. इनके प्रयोग से नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश, कॉपर, मैगनीशियम, जिंक तथा कैल्शियम की उपलब्धता बढती है।
2. इसके प्रयोग से वृद्धि वर्धक हार्मोन्स भी उपलब्ध होते हैं।
3. पौधों की जड़ों में लगने वाले रोगों से सुरक्षा मिलती है।

जैविक खेती के लिए शस्य तकनीक

डा0 एस0 एस0 सिहं
भू.पू. अध्यक्ष, शस्य विज्ञान विभाग एवं अध्ष्ठिाता, कृषि संकाय, शियाट्स इलाहाबाद

विगत चार दशकों में कृषि उत्पाद बढ़ाने के अभूतपूर्व प्रयास किए गये फलस्वरूप हमारा उत्पादन लगभग साढ़े चार गुना बढ़ गया और हम ने खाद्यानों के क्षेत्र में स्वावलम्बन एवं आत्मनिर्भरता प्राप्त कर लिया यद्यपि हमें दलहन एवं तिलहन फसलों के उत्पादन में वान्छनीय दक्षता उपलब्ध नहीं हो पाई। पिछले लगभग एक दशक से निवेशों को बढ़ाने के वावजूद हमारी फसलों की उत्पादकता नहीं बढ़ाई जा रही है तथा हमारी कृषि उत्पादों की गुणवत्ता में भी बहुत गिरावट आ गई जिसके फलस्वरूप मनुष्यों एवं पशुओं में तरह–तरह की बीमारियाँ हो रही है। हमारी भूमि की उर्वरता का निरन्तर ह्रास हो रहा है, भूमि से लाभदायक जीवाणु तथा केंचुए विलुप्त होते जा रहें हैं। भूमि मे जीवांश कम होते रहने के कारण इसकी जल एवं तत्व धारण क्षमता कम होती जा रहीं है जिससे कृषि रासायन प्रयोग करने पर भूजल तथा जलाशयों में जा रहे हैं जिससे हमारे पीने का पानी भी अत्यन्त प्रदूषित होता जा रहा है। इस प्रकार हमारे सारे जीवन के स्रोत (वायु, जल, पृथ्वी) प्रदूषित हो कर सभी जीवों के लिए घातक बनते जा रहे हैं। यदि इन बिन्दुओं पर समय से विचार नहीं किया गया तो बहुत विलम्ब हो जायेगा।

वर्तमान परिस्थिति में केवल एक ही विकल्प शेष बचता है कि हम अपनी कृषि की प्राचीन रीति को अपनायें परन्तु इसमें फसल की उत्पादकता तथा सकल खाद्यान्न उत्पादन एक भयंकर प्रश्न सामने आता है क्योंकि हमारी फसलों की वर्तमान प्रजातियों को उगाने में हमें फसलों के पोषक तत्वों की बहुत अधिक मात्रा प्रयोग करनी पड़ती है जोकि जैविक साधनों से पूरा करना काफी कठिन होगा। इस समस्या से उभरने के लिए हमें योजनाबद्ध तरीके से खेती करनी होगी और रसायनों का प्रयोग धीरे–धीरे कम करना होगा ताकि हमारी उत्पादकता बनी रहे, उत्पादन न घटे तथा हमारे प्राकृतिक संसाधन – भूमि, जल एवं पर्यावरण में सुधार हो सके। इसके लिए हमें एकीकृत पोषक तत्व प्रबन्धन एवं जैविक खेती का सहारा लेना पड़ेगा। वर्तमान लेख में शस्य तकनीक के बारे में चर्चा की गई है जिससे रासायनिक (कृषि–रासायनों) पर निर्भरता घटाई जा सकती है, उत्पादकता स्थिर या बढ़ाई जा सकती है, उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार लाया जा सकता है तथा भूमि को सुधारा जा सकता है :

1. भूमि प्रबन्धन : खेत को वर्षा होने से पूर्व मेड़बन्दी करना आवश्यक होता है क्योंकि वर्षा के पानी के साथ लगभग 10 से 12 कि0ग्रा0 नाइट्रोजन, 8 से 10 कि0ग्रा0 गन्धक, लोहा इत्यादि तत्वों की प्राप्ति होती है। खेत का पानी खेत मे ही रहता है जिससे भूमि का कटाव नहीं होता और उर्वरता बढ़ती है। वर्षा में बिजली चमकने पर भी भूमि में नाइट्रोजन की उपलब्धि होती है। खेत की गर्मी के मौसम में गहरी जुताई या उसमें हरी खाद हेतु फसल उगाने से खरपतवार, हानिप्रद कीट, व्याधियों के जीवाणु नष्ट होते हैं तथा भूजल में वृद्धि होती है।

2. प्रमाणित तथा उत्तम गुणवत्ता वाले बीज का चुनाव करें : इससे खेत में अवांछनीय पौधे तथा खरपतवार नहीं उगेंगे और उनके नियंत्रण में शाकनाशी रसायन नहीं प्रयोग करना पड़ेगा।

3. फसल को कतारों में बोवें : इससे खरपतवार पहचानने में तथा निराई–गुड़ाई में आसानी होगी और उत्पादकता अधिक मिलेगी।

4. खरपतवार के बीज रहित जैविक खादों का प्रयोग करें : प्रायः जैविक खादों के द्वारा खेत में खरपतवार के बीज आते हैं इसलिए खूब सड़ी हुई खादों का प्रयोग करें अथवा मुर्गी की खाद, खली और वर्मी कम्पोस्ट का प्रयोग करें।

5. फसल–चक्र अपनावें : फसल चक्र अपनाने से कृषि कार्यों के द्वारा खरपतवार का नियंत्रण आसान हो जाता है। जैसे गेहूँ में उगने वाले खरपतवार जैसे गेहूँ का मामा (फलैरिस),

जंगली जई, बथुआ, कृष्ण नील, इत्यादि का नियंत्रण बरसीम या आलू उगाने से हो जाता है। इसी प्रकार गेहूँ या मटर उगाने से बरसीम में उग रही कासनी नष्ट हो जाते हैं।

इसके साथ ही भूमि में विभिन्न गहराई से पोषक तत्वों का उपयोग हो जाता है क्योंकि अलग–अलग फसल की जड़ें अलग–अलग गहराई तक जाती है। विभिन्न गहराई वाली जड़ों की फसलों को उगाने पर भूमि में कड़ी परत नहीं बनती तथा उसमें जल एवं वायु का उचित संचार होता है। इससे भूमि की उर्वरता में तथा फसल की उत्पादकता में सुधार होता है।

धान के खेत में लेव लगाकर·रोपाई करने पर खरपतवार के बीज नीचे चले जाते हैं इस खेत में ज़ीरो टिल सीडड्रिल से गेहूँ की बुवाई करने पर ये बीज नीचे ही रह जाते हैं और उनका जमाव (अंकुरण) नहीं हो पाता। धान के ठूंठ से लगभग 2–3 टन जैविक पदार्थ तथा 25–30 कि0 नाइट्रोजन भूमि को मिल जाता है जिससे भूमि में जीवांश पदार्थ बढता है तथा उर्वरता में सुधार होता है। इससे गेहूँ में सिंचाई के रूप में कम पानी की आवश्यकता होती है।

6. पौधशाला में खरपतवार या पेड़ो की पत्तियों को एकत्रित करके जलावे : यह बहुत ही प्राचीन तरीका है इससे सतह पर मौजूद खरपतवार के बीज जल जाते हैं तथा सतह का तापमान बढ़ जाने से भूमि में निर्जीवनीकरणों की प्रक्रिया होती है जिससे हानिकारक कीट, व्याधि फैलाने वाले जीवाणु मर जाते हैं तथा भूमि में पोटाश की प्रचुर मात्रा उपलब्ध हो जाती है।

7. दलहनी फसल अथवा हरी खाद : वर्ष में कम से कम एक बार दलहनी फसल उगावे अथवा हरी खाद का प्रयोग करें: बहुफसलीय कार्यक्रम में कम से कम एक बार दलहनी फसल अवश्य उगावे जैसे धान–गेहूँ–उर्द/मूँग/लोबिया इत्यादि। दलहनी फसलों की फलियों को तोड़ने के पश्चात् पौधों को हरी खाद के रूप में मिट्टी में जुताई करके मिलावे जिससे जीवांश एवं पोषक तत्व भूमि को मिलता रहेगा।

8. पलावर : अषिक दूरी पर बोई गई फसल की कतारों के बीच में अवरोध परत (पलावर) का प्रयोग करें: अवरोध परत (पलावर) का अभिप्राय है ऐसे पदार्थ को फैलावें जिससे खरपतवार न उग सके, भूमि से नमी का वाष्पीकरण न हो तथा वे पदार्थ सड़कर भूमि में जीवांश पदार्थ की मात्रा बढ़ावे जैसे – पेड़ की सूखी पत्तियाँ, पुआल, भूसा, कागज इत्यादि अथवा प्लास्टिक को बिछा दें जिससे नमी का संरक्षण, खरपतवार, कीट व व्याधियों से फसल बच जाती है।

9. एकीकृति पोषक तत्व प्रबन्धन : उर्वरकों के द्वारा तत्वों की आपूर्ति केवल कुछ ही तत्वों तक सीमित रहती है तथा उन पोषक तत्वों के अतिरिक्त कुछ भारी धातु तत्व भी पाये जाते हैं जिससे हमारी भूमि व जल प्रदूषित होती है। पौधों की बढ़वार तथा उनके अच्छे उत्पादन के लिए लगभग 17 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है जिन्हे हम केवल पौध व पशु अवशेषों के द्वारा ही दे सकते हैं। इस लिए यह आवश्यक है कि हम अधिक से अधिक जैविक खादों का प्रयोग करें।

देशी विधियों द्वारा फसल के हानिकारक कीटों का नियंत्रण

प्रो0 (डा0) एम0 एस0 मिश्रा एवं प्रो0 (डा0) पी0 गुप्ता

1. गोबर एवं जानवरों (गाय, भैंस) के मूत्र का घोल : एक बड़े से ड्रम में 5 कि.ग्रा. गोबर, 5 लीटर मूत्र एवं 5 लीटर पानी लें। तीनों को भली भांति आपस में मिलाकर ड्रम को 15 दिनों के लिए ढ़क दें। यह अवधि जब पूरी हो जाये तो मिश्रण को ठीक प्रकार से मिला कर छान लें। अब एक अलग बर्तन में 100 ग्राम चूना को पानी में भिगोकर छान लें। अब दोनों घोलों को आपस में मिलाकर 100 लीटर पानी में मिलाकर एक एकड़ में छिड़कें। यह घोल कीटों को अण्डा देने एवं खाने से रोकता है। इससे पैदावार भी अच्छी होती है।

2. तम्बाकू का घोल : एक बड़े से बर्तन में 1 कि.ग्रा. सस्ती तम्बाकू 10 लीटर पानी में 30 मिनट तक भली भांति उबालें। यदि पानी कम होने लगे तो थोड़ा पानी मिला भी सकते हैं। इस अवधि के पाश्चात् घोल को कपड़े से छान लें। अब एक अलग बर्तन में 150 ग्राम साबुन का घोल तैयार कर लें। दोनों घोलों को मलमल के कपड़े से छान कर 100 लीटर पानी में मिलाकर एक एकड़ में छिड़के। इस घोल द्वारा सफेद मक्खी जो कि सब्जियों में 28 प्रकार के वायरस फैलाती है, का नाश किया जा सकता है। इसके अलावा सभी कीटों जिनके मुखांग चूसने वाले हों जैसे कि माहूँ, जैसिड आदि का भी नाश इस तम्बाकू के घोल से किया जा सकता है। इस घोल का एक छिड़काव पर्याप्त है। अधिक छिड़काव से लाभदायक कीटों का विनाश हो सकता है।

3. लहसुन व हरी मिर्च का घोल : इस घोल के लिए 3 कि.ग्रा. हरी कड़वी मिर्च लें उसके डन्ठलको तोड़कर मिक्सी अथवा सिल बट्टे पर भली भांति पीस कर 10 लीटर पानी में रात भर के लिए भिगो दें। अब आधा कि.ग्रा. लहसुन को छीलकर उपरोक्त विधि से पीस लें और 250 मि0ली0 मिट्टी के तेल में रात भर के लिए भिगो दें। लगभग 75 ग्राम साबुन को भी पानी में भिगो कर घोल तैयार कर लें।

   उपरोक्त तीनों घोलों को भली भांति छानकर आपस में मिलाकर 4 घंटे के लिए मिश्रण रख दें। इस अवधि के पश्चात् संमपूर्ण मिश्रण को 80 लीटर पानी में मिलाकर एक एकड़ में छिड़कें। इस घोल के द्वारा लेपिडोप्टेरा कुल जैसे कि चने की फली भेदक, टमाटर का फल छेदक स्पोडोप्टेरा आदि समस्त कीटों का नाश हो जाता है।

4. निमकौरी का घोल : पाँच कि.ग्राम निमकौरी को छील कर रात भर पानी में भिगो दें। दूसरे दिन इसी निमकौरी को सिल बट्टा अथवा मिक्सी के द्वारा भली भांति पीस लें। उपरोक्त निमकौरी की पिसी हुई लुगदी को मलमल की सूती कपड़ों से लेकर गांठ बांधकर 10 लीटर पानी में 2 घंटे के लिए डूबो कर रखें। उसके बाद उसी पानी में डुबो कर 15 से 20 मिनट तक लुगदी को निचोड़ें। अब उपरोक्त घोल को पतले कपड़े से छानकर अलग रख दें। इस घोल में 100 ग्राम साबुन का छना हुआ घोल मिला दें। सम्पूर्ण मिश्रण को 100 लीटर पानी में मिलाकर एक एकड़ में छिड़कें। इस घोल का प्रयोग सभी प्रकार के कीटों के विरूद्ध किया जा सकता है।

5. नीम की पत्ती एवं मट्ठा का घोल : एक ढ़क्कन–दार बर्तन में 250 ग्राम नीम की पत्ती धो कर साफ कर डालें। इसमें 1 लीटर मट्ठा डालकर बर्तन को 15 दिना के लिए बन्द कर दें। जब उपरोक्त समय समाप्त हो जाये तो मिश्रण को मिक्सी द्वारा पीस कर उसका रस निकाल लें।

   अब एक अलग बर्तन में 40 मि.ली. उपरोक्त मिश्रण का रस लें उसमें 960 मि.ली. पानी मिला दें और एक ग्राम साबुन घोलकर मिला दें। यह मिश्रण एक लीटर के लिए है। इसी दर से एक हेक्टेयर के लिए तैयार कर सकते हैं। इस घोल के द्वारा सभी प्रकार के कीटों का नियंत्रण सम्भव है।

6. अन्न भण्डारण :

1. दानों को धूप में सुखाकर भण्डारित करें।
2. अनाज के साथ नीम की पत्ती सुखाकर रखें।
3. अनाज के बीच कंकड़ीदार नमक की छोटी पोटलियाँ रखें। नमी नमक सोखेगा एवं अनाज सुरक्षित रहेगा।
4. बोरों के भूसे के अन्दर काफी गहराई में वे दीवारों से दूर रखें।
5. लहसुन की पिसी पत्ती औरं राख बीजों की सुरक्षा हेतु रखें।
6. तालाब की चिकनी मिट्टी का चिकना बारीक पाउडर बारीक पाउडर बीजों के साथ मिलाकर रखें।
7. बुझा हुआ चूना अनाज के साथ मिलाकर रखने से भण्डार में कीट नहीं लगते हैं।
8. प्याज और आलू को भण्डार के फर्श पर बालू की मोटी तह बिछाकर रखने से उच्च तापक्रम से बचाया जा सकता है।
9. एक किलो सरसों का तेल एक कुन्तल दाल के साथ मिलाकर रखने से दाल सुरक्षित रहती है।

जैविक नाशीजीव नियंत्रण

श्री धर्मवीर हाबिल एवं डा. अश्वनी कुमार
सहायक प्राध्यापक एवं सह-प्राध्यापक, शियाट्स इलाहाबाद

फसलों के नाशीजीवों (pests) कों नियन्त्रित करने के लिए दूसरे जीवों (प्राकृतिक शत्रुओं) को प्रयोग में लाना **जैव नियन्त्रण** (Biological pest control) कहलाता है।

जैव नियन्त्रण एकीकष्त नाशीजीव प्रबधन (Integrated pest management) का महत्वपूर्ण अंग है। इस विधि में नाशीजीवी व उसके प्राकृतिक शत्रुओ के जीवनचक्र, भोजन, मानव सहित अन्य जीवों पर प्रभाव आदि का गहन अध्ययन करके प्रबन्धन का निर्णय लिया जाता है। विभिन्न नाशीजीवों के नियंत्रण में उपयोग होने वाले प्राकृतिक शत्रुओं का विवरण निम्न प्रकार से हैं:-

नाशीजीवों के प्राकृतिक शत्रु

कीटों (नाशीजीवों) के नियन्त्रण के लिए प्रयोग किए जाने वाले प्राकृतिक शत्रुओं की तीन श्रेणियां हैं:-

1. परजीवी (Parasitoids)
2. परभक्षी (Predators)
3. रोगाणु (Pathogens)

परजीवी कीट अपना जीवन चक्र दूसरे कीड़ो के शरीर में पूरा करते है जिसके परिणाम स्वरूप् दूसरे कीड़े मर जाते हैं। यह परजीवी कई प्रकार के होते है जैसे: अण्ड परजीवी, प्यूपा परजीवी, अण्ड सुण्डी परजीवी, व्यस्क परजीवी आदि। इनके उदहारण हैं: ट्राकोग्रामा, ब्रेकान, काटेशिया, किलोनस, एन्कारशिया इत्यादि।

परभक्षी परभक्षी अपने भोजन के रूप में दूसरे कीडों का शिकार करते हैं। यह फसल नाशी कीटों को खा जाते हैं। इनके उदहारण हैं: मकड़ी, ड्रेगनफलाई, डेमसफलाई, कोकसीनेलिड बीटल, प्रेइंगमेन्टिस, क्राइसोपरला, सिरफिड, इअरविग, ततैया, चींटियो, चिड़िया, पक्षी, छिपकली इत्यादि।

मकड़ी

कोकसीनेलिड बीटल

प्रेइंगमेन्टिस

ततैया

रोगाणु सूक्ष्म जीव होते है हारिकारक कीटो में बीमारियाँ उत्पन्न करके उन्हें मार डालते है। रोगाणुओं की प्रमुख श्रेणियां है: फफूँद, बैक्टीरिया तथा वायरस ,इनके अतिरिक्त कुछ सूत्रकृमि (nematodes) भी कीटों में बीमारियां उत्पन्न करके उन्हें मार डालते हैं। इनके उपयोग और प्रभाव के कारण इन्हें बायोपेस्टिसाईड भी कहते हैं। इनके उदहारण हैं:

फफूँद

प्रकृति में 90 प्रतिशत कीट, उनकी विभिन्न अवस्थाएं (अंडे,सूडी, प्यूपा, व्यस्क) फफूँद के आक्रमण से नष्ट हो जाते हैं। इनके उदहारण हैं: ब्यूवेरिया बासियाना, मेटारिजियम एनिसाप्ली, हिरिस्टुला, वार्टिसिलियम लिनाई, आदि। फफूंद का आक्रमण सभी कीटों पर लगभग समान रूप से होता हैं। फफूंद के आक्रमण से कीट 10 से 15 दिनों मे मर जाते हैं। मेटारिजियम एनिसाप्ली, का प्रयोग टिड्डी दल के नियन्त्रण में व्यापक रूप से किया जा रहा है। ब्यूवेरिया बासियाना नरम शरीर वाले कीड़ो के लिए बहुत प्रभावी है। फफूंद संक्रमण द्वारा कीड़ों का मारती है। फफूंद द्वारा संक्रमण के लिए नमी का होना आवश्यक हैं। संक्रमण शरीर से संपर्क में आने से होता है। फफूंद कीड़ों की सभी अवस्थाओं पर प्रभावकारी होती हैं।

बैक्टीरिया

प्रकृति में बेलिलस थूरिनजैंसिस और और बेसिलस पौपिली नामक बैक्टीरिया कीट नियंन्त्रण में प्रभावकारी है। लैपीडाप्टरन कीटों के नियंन्त्रण में बेसिलस थूरिनजैंसिस का उपयोग व्यापक रूप से किया जा रहा हैं। बैक्टीरिया संक्रमण द्वारा कीड़ों को मारते हैं, संक्रमण आहार द्वारा होता है।

वायरस

प्रकृति में न्यूक्लियो पालीहाइड्रोसिस वायरस और ग्रेन्यूलोसिस वायरस नामक वायरस कीट नियंत्रण में प्रभावकारी हैं। वायरस संक्रमण द्वारा कीड़ों को मारते हैं, संक्रमण आहार द्वारा होता

है। वायरस स्पीसीज स्पेसीफिक होते है। एक स्पीसीज के लिए उसका खास वायरस ही लाभकारी होगा। अतः वायरस के प्रयोग से पहले कीड़ों की सही पहचान हाना आवश्यक है।

जैव नियन्त्रण रणनीतियाँ

जैव नियन्त्रण की तीन रणनीतियां हैं:

प्राकृतिक शत्रुओं का प्रवेश

इस विधि में प्राकृतिक शत्रुओं को अन्य स्थान से लाकर आक्रमणकारी कीटांे पर छोड़ते हैं। यह बड़ी सावधानी के साथ वैज्ञानिक लोंगों द्वारा अम्ल में लाया जाता हैं। नाशीजीवों के नए स्थानों पर फैल जाने से वहां पर उनके प्राकृतिक शत्रु मौजूद नहीं होेते। वैज्ञिानिक उनके प्राकृतिक शत्रुओं को विश्व में अन्य स्थानों पर खोजते हैं। उनके सुरिक्षत होने को निश्चित करते हैं। फिर उन्हें प्रयोग में लाते हैं।

बढ़ोतरी करना

इस विधि में पहले से ही मौजूद प्राकृतिक शत्रुओं की संख्या को इस कदर बढ़ाया जाता है ताकि हानिकारक कीड़ों की संख्या को आर्थिक हानि स्तर से नीचे रख सकें। यह बड़ोतरी प्रयोगशाला में गुणन किए हूए प्राकृतिक शत्राुओं द्वारा की जाती है।

संरक्षण

यह सबसे महत्वपूर्ण रणनीति है। यह ऐसी व्यवस्था है जिसमें प्रकृति में पाये जाने वाले प्राकृतिक शत्रुओं यानि मित्रजीवों को संरक्षण दिया जाता है। ताकि उनकी संख्या का संतुलन हानिकारक कीड़ों के साथ बना रहे। होता यूं है कि फसलों में हानिकारक कीड़ों की संख्या मित्र जीवों/प्राकृतिक शत्रुओं की संख्या से बहुत कम होती है। यह मित्र जीव/प्राकृतिक शत्रु हानिकारक कीड़ों को नष्ट करते रहते हैं और उनकी संख्या को आर्थिक हानि स्तर से नीचे रखने में हमारी सहायता करते हैं। हम मित्र कीटों तथा दुश्मन कीटों की पहचान न होने के कारण या शत्रु कीड़ों के आपेक्षित आक्रमण के भयवस या शत्रु कीड़ो तथा मित्र कीटों के अनुपात का सही आंकलन न होने की स्थिति में अक्सर रासायनिक कीट नाशकों का छिड़काव तभी करें जब एकीकष्त नाशीजीव प्रबन्धन के अन्य तरिके सफल/कारगर न हों। रासायनिक कीट नाशकों का छिड़काव उन्हीं पौधों या पंक्तियों पर करें जहां आक्रूमण आर्थिक हानि स्तर से अधिक हो। हमें फसलों की लगातार निगरानी करते रहना चाहिए अर्थात हानिकारक कीड़ों, मित्र जीवों, बीमारियों, खरपतवारों की उपिस्थिति तथा संख्या का आंकलन हर समय करते रहना चाहिए।

संरक्षण के लिए निम्न बातों का ध्यान रखें:-

i) हानिकारक कीड़ों के अण्ड-समूहों को एकत्र करके खेत में स्थापित बांस पिंजरे में रखना ताकि मित्र
किटों को बचाया जा सके तथा हानिकारक कीटों को नष्ट किया जा सकें।

ii) किसानों को ऐसा प्रशिक्षण दिया जाये ताकि वे हानिकारक तथा मित्र किटों को पहचान कर स्प्रे के
समय मित्र कीटों को कीटनाशकों से सीधे सम्पर्क से बचा जा सकें।

iii) यदि सभी सम्भव एककीकष्त नाशीजीव प्रबन्धन विधियां लाभकारी न हों तो सुरक्षित कीटनाशकों
का उचित मात्रा में उचित विधि द्वारा सही समय का उपयोग करना चाहिए।

iv) रासायनों के प्रयोग से पहले मित्र तथा शत्रु कीटों का अनुपात तथा आर्थिक हानि स्तर देखना चाहिए। यदि यह अनुपात 1:1 हो तो रसायनों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

v) यहां जरूरी हो, केवल सुरक्षित, रिफरिश्ज़शुदा तथा कम प्रदूषण फैलाने वाली रासयनिक दवाईयों
का ही प्रयोग करना चाहिए।

vi) यथासम्भव, रासायनों को स्पोट या स्ट्रीप विधि द्वारा ही प्रयोग में लाना चाहिए अर्थात जिस जगह हानिकारक कीड़ों की उपस्थिति आर्थिक हानि स्तर से ऊपर पाई जाए केवल उसी जगह ही
रासायनों का प्रयोग हो ताकि दूसरी जगह के प्राक्तिक शत्रुओं का संरक्षण हो।

vii) बीज बोने तथा फसल काटने का समय इस तरह निर्धारित किया जाए ताकि फसल कीड़ों तथा बीमारियों के मुख्य प्रकोप से बच सके।

viii) मेढ़ों पर या उनके आसपास फूल वाली या ट्रेप फसल लगानी चाहिए जिससे मित्र किड़ों को मकरन्द
तथा संरक्षण मिल सके।

ix) नर्सरी के पौधों की जड़ो का ट्राईकोडरमा विरडी/मैटारिजियम के घोल में डुबो कर उपचारित करके
ही लगाना चाहिए।

x) फसल चक्र अपनाने से भी किसान, मित्र कीड़ों को संरक्षण प्रदान कर सकते हैं।

जैविक खेती में टिकाऊ तकनीकियां

समीर तोप्नों, सहायक प्राध्यापक (टिकाऊ खेती)

बोकाशी की तैयारी : बोकाशी एक सड़ाई हुई जैविक पदार्थों की खाद है, जो मुर्गी खाद, उपरी मिट्टी, कना और भूसे का कोयला मिलाकर बनाया जाता है।

सामाग्री :	मुर्गी का खाद	:	60%
	उपरी मिट्टी	:	20–25%
	कना	:	10–15%
	भूसी का कोयला	:	5–10%
	पर्याप्त मात्रा मे पानी (और हवा)		

विधि : इन सभी सामाग्री को अच्छी तरह मिलाकर पानी डालें और 2 से 3 फिट ढ़ेर की उँचाई रखें और पुवाल से पूरा ढ़क दें। इस ढ़ेर को 2 या 3 दिनों के अन्तराल में कम से कम 3 बार पलटना जरूरी है। पलटते समय यह ध्यान दें कि निचला भाग ऊपर और ऊपर का भाग नीचे होना चाहिए, ताकि अन्दर वाले भाग को हवा मिल सके।

जब भी बोकाशी को पलटें पर्याप्त मात्रा में पानी (और हवा) आवश्य प्रदान करें। सफेद रंग का जीवाणु बोकाशी के ऊपर रहता है जो खाद बनने की प्रक्रिया में सहायता करता है। सड़ने की प्रक्रिया के कारण बोकाशी का तापमान 70^0 सेल्सियस तक हो जाता है। कुछ दिनों में तापमान धीरे–धीरे कम होने लगता है।

साधारण जमीन बोकाशी बनाने के लिए उपयुक्त होता है, क्योंकि जमीन में बहुत सारे सुक्ष्म जीवाणु होते हैं। लगभग 14 से 15 दिनों के बाद बोकाशी का प्रयोग कर सकते हैं। यदि मुर्गी की खाद की जगह गोबर का इस्तेमाल करते हैं तो अधिक समय लगता है।

भण्डारन : चौदह से 15 दिनों के बाद तैयार खाद को बोरियों मे भर कर वर्षा और सीधे धूप से बचाव कर भण्डारन करना चाहिए।

लाभ :

1. गोबर या पत्तियों की खाद की अपेक्षा जल्दी तैयार होता है।
2. पौधों पर जल्द प्रभाव।
3. उर्वरक तत्वों एवं पौधों के लिए लाभकारी कारकों का अच्छा स्रोत।
4. बनाने में आसानी।
5. बुरकाव में आसानी।
6. सूक्ष्म जीवाणुओं का अच्छा स्रोत।

हानि : अच्छी तरह ना तैयार होने पर यह हानिकारक जीवाणुओं की संख्या की वृद्धि हो सकता है।

प्रयोग : लगभग दो से 3 कुन्तल प्रति ऐकड़ की दर से सब्जियों तथा अन्य सभी फसलों में प्रयोग कर सकते है।

फोटो सिंथेटिक बैक्टीरिया (पी0 एस0 बी0)

पी0 एस0 बी0 का प्रयोग : धान या सब्जी में 1 से 2 एम0एल0 प्रति लिटर पानी के दर से छिड़काव करें। जानवरों के अस्तबल या तालाब में भी प्रयोग किया जा सकता है।

प्रभाव :

1. यह वायरस द्वारा उत्पन्न रोगों का रोकथाम करता है।
2. लाभकारी बैक्टेरिया को बढ़ाता है।
3. नाइट्रोजन को मिठ्टी में समाता है।
4. कीट प्रकोप को कम करता है।
5. पानी साफ करता है।

6. तालाब या जानवरों के अस्तबल में दुर्गंध को दूर करता है,
पी0 एस0 बी0 को कम्पोस्ट, पुआल, तरल खाद या बोकाशी के साथ प्रयोग करने से जैविक/कार्बनिक पदार्थ बढ़ाता है।

भूसी का कोयला : यह एक तरह का कोयला है जो चावल के भूसी से बनाया जाता है। साधारणतः कोयले में हाइड्रोजन, कार्बन, नाईट्रोजन, ऑक्सीजन, फॉस्फोरस, पोटैशियम आदि होता है।

1. लकड़ी के कोयला और भूसी का कोयला की तुलना

लकड़ी का कोयला	विश्लेषण	भूसी का कोयला
ज्यादा	तापमान	कम
कम	बड़े छिद्र	ज्यादा
ज्यादा	छोटे छिद्र	कम
कम	हवा की मात्रा	ज्यादा
ज्यादा	पानी रोकने की क्षमता	कम
कम	पानी का बहाव	ज्यादा
ज्यादा	क्षारीयता	कम
ज्यादा	खनिज पदार्थ	कम

2. भूसी के कोयले के फायदे :

(क) भूसी के कोयले में राख होता है जो क्षारीय होता है (pH 8-9)
→ अम्लीय मिट्टी की पी0 एच0 को बढ़ाता है।

(ख) पौधों को उर्वरक तत्व को प्रदान करता है।
→ पानी में घुलने वाले फॉस्फोरस और पोटाश
अधिक मात्रा में कार्बन संबन्धी तत्व जैसे $CaCO_3$
यह 2–3% खनिज पदार्थ देता है।

(ग) अधिक मात्रा में छिद्र (रिक्त स्थान)
→ सूक्ष्म जिवाणुओं के लिए रहने का माध्यम

(घ) मृदा में खनिज पदार्थ की मात्रा को बढ़ाता है
→ मिट्टी की रचना में सुधार

(ड़) रोगों से सुरक्षित, कीटों के अण्डे तथा खरपतवार के बीजों से रहित अच्छा माध्यम

(च) काला रंग
→ सूर्य की उर्जा (प्रकाश को) सोखने क्षमता अधिक है।

(छ) हलका और बनाने में आसान

3. भूसी के कोयले प्रयोग द्वारा सूक्षम जीवाणु पर प्रभाव :

भूसी का कोयला → सूक्ष्म जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि
ज्यादा छिद्र → जीवाणुओं के रहने के लिए पर्याप्त स्थान
→ पर्याप्त हवा की मात्रा
→ पानी की उपयुक्त मात्रा
राख → उपयुक्त pH

4. उपयोग :

(क) नर्सरी के पौधों के लिए मिट्टी अथवा अच्छा माध्यम है।
कोयले में खनिज और उर्वरक तत्व जैसे फॉसफोरस, पोटाश मैग्निशियम और अच्छी मात्रा में हवा मिलती है और पानी सोखने की क्षमता बढ़ जाती है।
मिट्टी में अम्लीयता या क्षारीयता नहीं रहती है।

(ख) बीजों को ढ़कने के लिए भी प्रयोग करना लाभकारी सिद्ध हुआ है।
ऊपर लिखे गये कारणों की तरह

(ग) पालतू जानवरों के खुराक :
– क्षारीय खुराक शरीर के अम्लीयता को समाप्त करता है

– लैक्टिक अम्ल, वसा और अम्लीयता उत्पन्न करता है।
– वसा कोयले के द्वारा नियन्त्रित होता है।
– डायरिया से बचाता है।
– अत्यधिक मात्रा में सूकर के खुराक में सम्मिलित करने से जानवर की वनज में घटी हो जाएगा।

(घ) कोयला दुर्गन्ध को विशेषतः अमोनिया, इत्यादि के गंध को खत्म करता है क्योंकि इसमें उपस्थित छिद्रों में लाभकारी सूक्ष्म जीवों का क्रिया भी होता है।

(घ) खाद के सामग्री की तरह
– खाद के बनंने में सहायता करता है
– सड़ाने वाले जीवाणुओं को जीवित एवं क्रियाशील रखता है।

5. भूसी का कोयला बनाने की विधि :

(क) सामाग्री :
1. सूखी भूसी
2. चूल्हा (तेल का डब्बा चिमनी के साथ)
3. कुछ लकड़ी के टुकड़े (टहनी, अखबार)
4. पानी (पानी रखने के लिए ड्रम)

(ख) विधि :
(क) चूल्हे में आग लगायें
(ख) चूल्हे के चारो ओर भूसी रखें
(ग) ध्यान रखें कि आग कभी ऊपरी सतह पर न आए (जिससे राख न बनने दें) जब सतह 80% काला नजर आए उस समय चूल्हे को हटा दें और अच्छी तरह मिलायें तथा आग बुझाने के लिए पानी छिड़के और मिलाएं ।

ड्रम में चारकोल बनाना :

1. परिचय : ड्रम में चारकोल/कोयला बनाना बहुत आसान है, यदि उचित एवं पर्याप्त सामाग्रियां उप्लब्ध हो। एक बार बनाने से 15 किलो कोयला/चारकोल एवं 5 लीटर लकड़ी का सिरका प्राप्त हो सकता हैं। किसी भी तरह का ड्रम का प्रयोग कर सकते हैं, परन्तु अच्छा है स्टील वाला प्रयोग करें, तो लम्बे समय तक टिकेगा।

2. सिद्धान्त : जब लकड़ी को 300^0C तक गर्म करें तब यह गर्म होकर गैस उत्पन्न करता है। हवा की उपस्थिति में जलाने पर यह राख बन जायेगा। हवा के प्रवाह को कम कर अनुपस्थित कर दे तो न जल कर, केवल धुँआ उत्पन्न करेगा। अन्त में लकड़ी में केवल कार्बन रह जाता है जिसे कोयला कहते हैं।

3. कोयले के गूण :
(क) इंधन का स्रोत।
(ख) यह मिट्टी को संतुलित करता है क्योंकि यह क्षारीय (pH 8-9) होता है।
(ग) इस में छोटे छिद्र (रिक्त स्थान) होते हैं जो सूक्ष्म जीवाणुओं का माध्यम बन जाते हैं।
(घ) पर्याप्त जल सोखने की क्षमता होती है।
(ड.) उचित वायु प्रवाह है।
(च) अधिक पोषक तत्वो का संयोग या ग्रहण करने की क्षमता।
(छ) पोटैशियम और सिलिकोन का अच्छा स्रोत।
(ज) लाभकारी सूक्ष्म जीवियों के बढ़ने में सहायक होता है।

4. चारकोल बनाने की विधि :
(क) ड्रम के मुह पर लकड़ी जलाते रहें, जब तक आग अन्दर नहीं लग जाता।
(ख) प्रारम्भ सफेद धुआँ लकड़ी में उपस्थित पानी को भाप में बदलता है।

(ग) जब लकड़ी में उपस्थित हेमी सेल्यूलोज जलता है, भूरा रंग का धुँआ आने लगता है और जलने की महक आती है

(घ) भूरा से सफेद धुँआ लकड़ी में उपस्थित सिरका को उत्पन्न करता है।

इस अवस्था में चारकोल बनना प्रारंभ हो चुका है, ड्रम के मुह से लकड़ी हटा दें तथा मूंह 80–90% बन्द करना शुरू कर दें। चिमनी के मूंह का तापमान लगभग 82^0C होना चाहिए।

5. सफेद भूरा धुँआ जब आने लगता है तब चिमनी से तरल पदार्थ आने लगता है तथा उसे इकळा करने लगें। इस अवस्था में चिमनी के मूंह का तापमान लगभग 90–100^0C होना चाहिए।
6. धुँआ का रंग हल्का होने पर द्रव पदार्थ को संग्रह करना बन्द कर दें। इस अवस्था में चिमनी के मूंह का तापमान लगभग 170^0C होगा।
7. इसके बाद चिमनी के मूंह का तापमान लगभग 270^0C तक बढ़ जाना चाहिए। यदि तापमान इससे ज्यादा हो तो ड्रम का मूंह बन्द करें। यदि कम है तो उसके मुह को खोलें।
8. जब हल्का रंग का धुँआ उत्पन्न होता है, लकड़ी में उपस्थित लिगनिन जलाने की प्रक्रिया होता है।
9. जब चिमनी कें मूंह पर धुँआ दिखाई नहीं देता है तब लकड़ी में उपस्थित तार (अलकतरा) जल रहा है।
10. जब धुँआ नहीं दिखता है, तब तापमान 270^0C से अधिक हो जाता है। इससे यह पता चलता है कि कोई भी तार या दूसरे रासायनिक पदार्थ उपस्थित नहीं हैं।
    ड्रम का मूंह पूरी तरह बंद कर दें फिर आधे घण्टे बाद चिमनी का मुह भी बंद कर दें। जलाने से इस प्रक्रिया में जलाने से बुझाने तक लगभग 11 घण्टे का समय लेता है।

ध्यान देने योग्य बिन्दु :

चारकोल या कोयला बनाते वक्त ड्रम के ऊपर की मिट्टी गर्मी से फट जाता है, जिसे गीली मिट्टी की पुताई करते रहें। दूसरे दिन ठंड़ा होने के बाद कोयला निकाल लें।

लकड़ी का सिरका :

लकड़ी के सिरके से लाभ :

(क) इस में फफुँदी नाशक गुण हैं।

(ख) सूक्ष्म तत्व उपस्थित हैं तथा तरल कार्बनिक खाद के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

(ग) कम मात्रा में मुर्गी तथा सुकर पालन में चारा या जल में एक एम0एल0 प्रति कि0ग्रा0 अथवा प्रति लीटर की दर से प्रयोग लाभकारी सिद्ध हुआ है, विशेषतः कुछ रोगों की रोकथाम हेतु।

लकड़ी का सिरका प्राप्त करने के विधिं :

1. कोयला बनाते समय जब भूरा रंग का धुँआ आता है, कोई नली के प्रयोग द्वारा ठंड़ा करने पर तरल पदार्थ उत्पन्न होता है जिससे लकड़ी का सिरका कहते हैं।
2. धुँआ जब सफेद से भूरे रंग में बदलता है, तब उसे ठंड़ा कर तरल रूप एकत्रित किया जाता है।
3. नली मिट्टी या बांस का होना चाहिए तथा लोहा का नहीं क्योंकि सिरके के साथ प्रतिक्रिया करने से पानी हानिकारक बन सकता है।
4. तरल पदार्थ को एकत्रित करने वाला बरतन भी लोहे का नहीं होना चाहिए।

मल्च (पलावर)

परिचय : प्रक्षेत्र की मिट्टी की ऊपरी परत को विभिन्न प्रकार के ऑरगेनिक वस्तुओं, जैसे घास, खरपतवार, सूखी पत्तियाँ, भूसी, खाद इत्यादि से लगभग 5–15 से0 मी0 तक की मोटाई से ढ़कना यहिए। साधारणतः पलावर को अधिक अन्तः स्थान वाले कतारों के बीच या पौधों के चारो ओर लगाया जाता है। यह पौधों के रोपाई से पूर्व या बाद में लगाया जाता है। अत्यधिक मोटा पलावर

बीज अंकुरण में समस्या पैदा कर सकता है। यह समस्या बुवाई के समय द्वारा भी नियंत्रित किया जा सकता है।

पलावर को साधारणतः तीन वर्गों में विभाजित किया गया है।

1. ऑरगैनिक पदार्थों के द्वारा (पुआल, घास, पत्तियाँ, आदि)।
2. दलहनी फसलों के द्वारा (उर्द, मूंग, झाड़ी वाले मटर, आदि)।
3. कृत्रिम वस्तु (कागज, प्लास्टिक, आदि)।

प्रयोग से लाभ :

1. मिट्टी का कटाव रूकता है और मिट्टी को सीधे धूप से बचाता है।
2. मिट्टी का तापमान और नंमी उचित मात्रा में बनी रहती है।
3. खरपतवार की रोकथाम अथवा नियतरण।
4. रोग का प्रकोप भी कम करता है।
4. मिट्टी की संरचना उचित हो जाती है तथा कठोर होने से रोकता है।
5. मिट्टी नमी और उपजाऊ बनी रहती है और लगातार 3–5 वर्षों तक पलावर का प्रयोग करने से मिट्टी में खनिज लवण बने रहते हैं।
6. पलावर की उपस्थित से पानी धीरे–धीरे मिट्टी तक पहुँचाता है।
7. मिट्टी का तापमान संतुलित होता है। यह विशेषतः सूखाग्रस्त क्षेत्र में लाभाकारी सिद्ध होता है क्योंकि जल की मात्रा की आवश्यकता कम हो जाती है, क्योंकि नमी बनी रहती है।
8. मृदा उर्वरता में वृद्धि।

पलावर के प्रयोग खड़ी फसलों की पत्तियों से नहीं करना चाहिए जिससे बिमारी फैलने की सम्भावना रहती है। पलावर के सामाग्री को एकत्रित करना कुछ समय लेता है। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रो में रोग प्रकोप की सम्भावना बढ़ जाती है। अतः उचित रूप से इसका प्रयोग करना चाहिए, जैसे पलावर की सामाग्री अच्छी तरह सुखी हो।

पलावार की आवश्यकता एवं उस के लिए चुनी हुई सामाग्री के प्रकार को देखना जरूरी है। जिस वस्तु में कार्बन और नाइट्रोजन का अनुपात ज्यादा होता है जैसे पुआल, नींबू घास, नारियल की पत्तियाँ आदि का उपयोग करना चाहिए क्योंकि ये सभी लम्बे समय तक चलते हैं और इनमें हानिकारक बैक्टेरिया या सूक्ष्म किटाणु कम पनपते हैं। मिट्टी की उर्वरता को शिघ्र बढ़ाने के लिए जीवित मल्च लगाना चाहिए।

जैविक खेती में कृषि वानिकी

निक स्मित, भू.पू. सहायक प्राध्यापक (कृषि प्रणालियाँ)

प्राकृतिक खेती = 3 परिमाणिय खेती

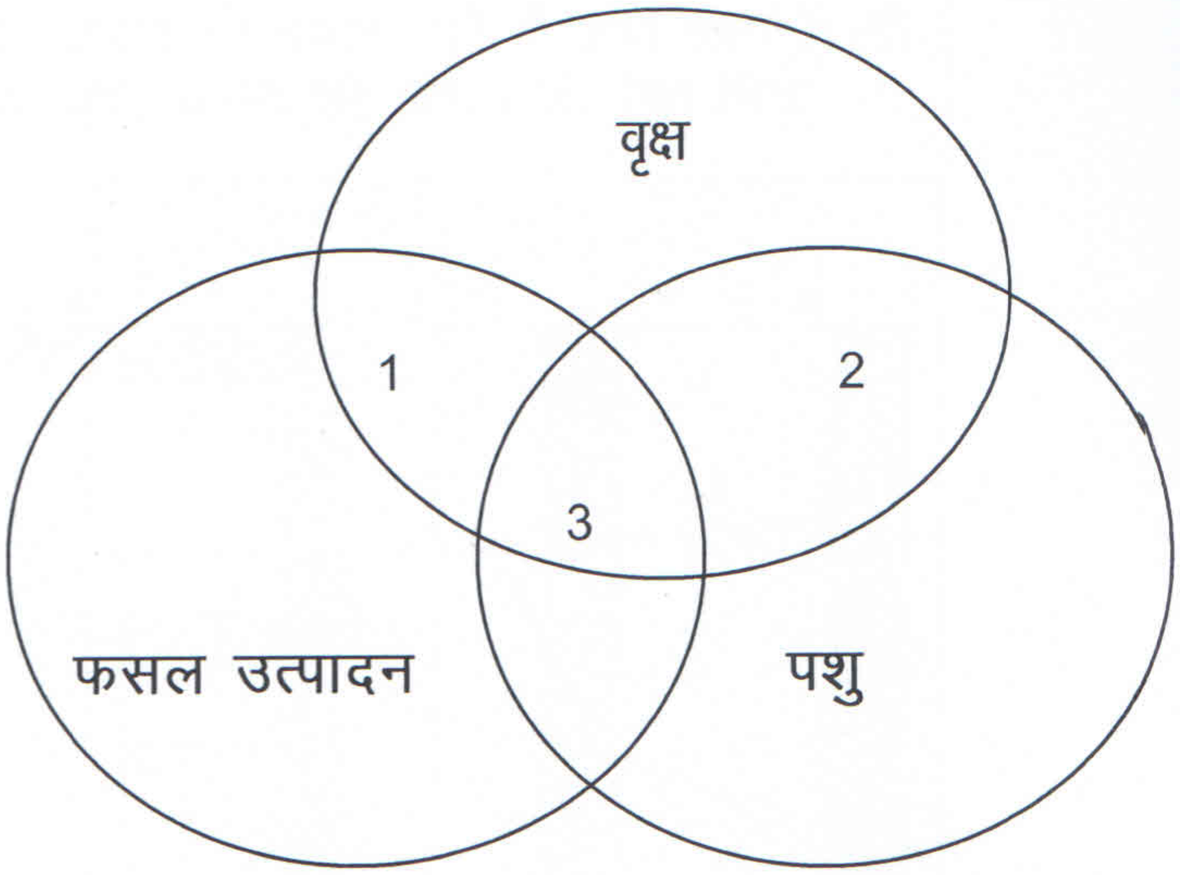

जैविक खेती में कृषि वानिकी से लाभ

1. कृषि में रोग, कीट, वातावरण की समस्या, सूखा, जल भराव तथा पाले इत्यादि से जोखिम कम करता
2. अधिक टिकाउ
   क. पोषण तत्वो में दक्षता
   ख. मिट्टी का कम कटाव
   ग. मृदा की उपरी सतह का सुधार तथा निचली सहत को जल भराव की पस्थिति का से बचाव
   घ. जैव वैविद्यता को बढ़ाता तथा प्रकृतिक संतुलन प्रदान करता है।
   ड. जैव उत्पाद में वृद्धि
3. कम लागत = अधिक लाभ
4. जल का सदूपयोग
   सिंचाई के तरीके
   जल का पुनः प्रयोग
5. आय में वृद्धि वैविद्यता
   आय के विभिन्न स्रोत
6. उत्पादों में वैविद्यता = छोटे पैमाने वाले किसानों में आत्मनिर्भरता
7. कम मजदूरी
8. वृक्षो द्वारा मृदा की रचना एवं उर्वरता में वृद्धि (मृदा संरक्षण + जैविक पदार्थ)
9. जीवित सुरक्षात्मक बाड़ा या घेरा
10. भाने वाले स्थल प्रकृति
11. प्रकृतिक वनों पर निर्भरता कम होने से कम दबाव तथा शोषण

जैविक खेती में कृषि वानिकी से हानि

1. वृक्ष फसलों तथा चारे के उत्पादन में कमी ला सकते हैं
   क. अन्तः फसलों के लिए जगह कम होता है
   ख. अत्यधिक छाया
   ग. जल की आपूर्ति में कमी
   घ. उर्वरक की आपूर्ति में कमी
2. वृक्षो द्वारा प्रारम्भिक वर्षों के आय में घटी हो सकती है
3. वृक्षों को जानवरों अथवा सिंचाई में कमी के कारण क्षति पहुँचने की सम्भावना

जैविक कृषि वानिकी को लागू करने से :

मिट्टी की बनावट (रचना) मि्ट्टी की उर्वरता

पौधों में प्राकृतिक समायोजन
स्वस्थदायक वस्तुओं का पर्याप्त मात्रा में उत्पादन
जल की सक्षमता

सहायता छोटे क्षेत्र का वातावरण
पानी की सतह मृदा से पानी का उचित बहाव

चित्र : एक हेक्टेयर (4 बिघा) भूमि में 25 प्रतिशत क्षेत्रफल का प्रयोग वृक्षों के क्रमों (लगाने) की विधिया। हक्सली (1985) द्वारा सैधान्तित वृक्ष/फसल को लगाने की रेखा चित्र

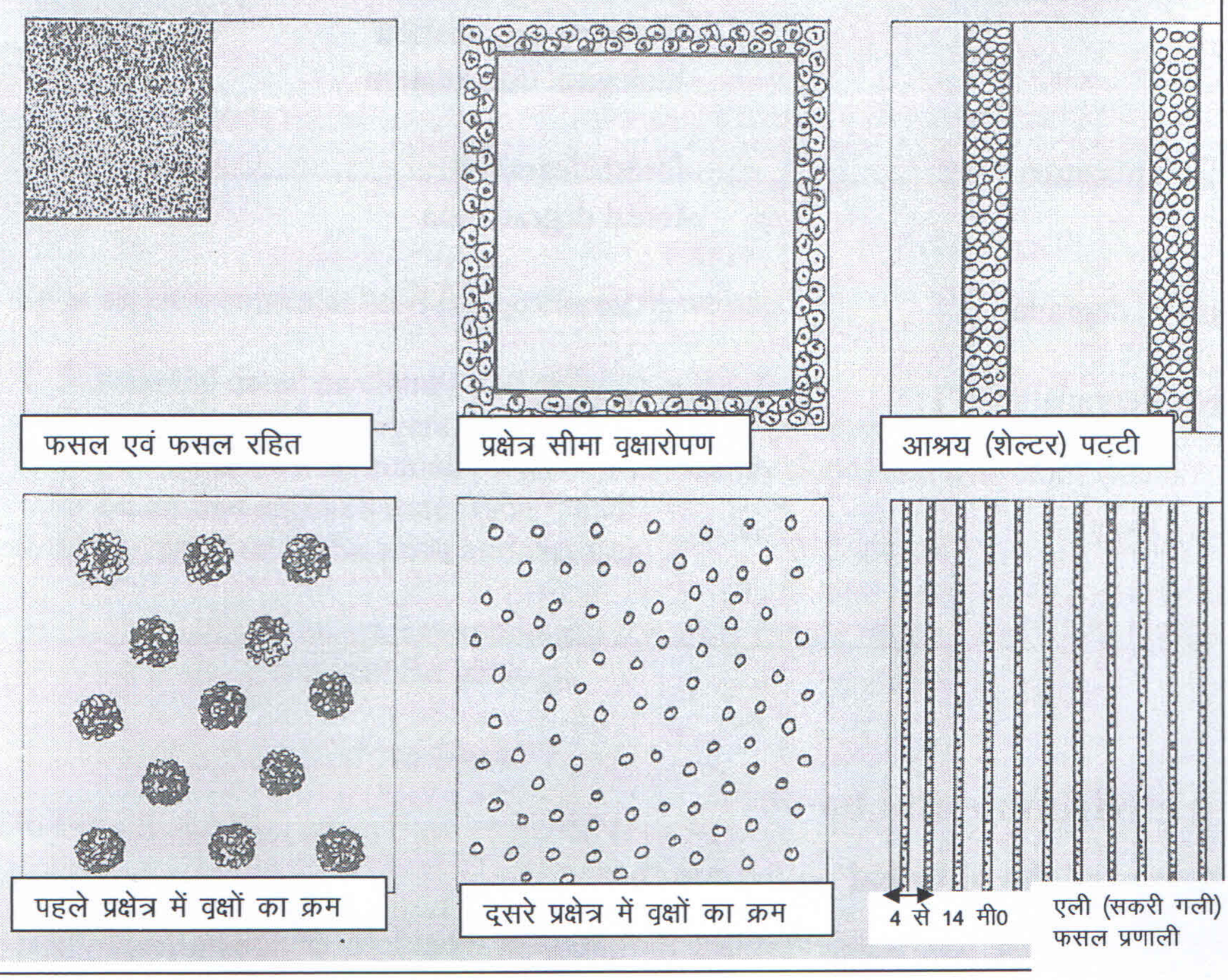

प्रक्षेत्र सीमा वृक्षारोपण के प्रभाव :

तेज हवा का प्रकोप कम करना, मिट्टी का कटाव कम करता है, बांधों/मेड़ों के स्थान का प्रभावकारी प्रयोग – जैसे चारा उत्पादन/ईधन/वृक्षों का उत्पाद/जैविक पदार्थ।

आश्रय (शेल्टर) पट्टी :

तेज हवा का बहाव एवं मिट्टी का कटाव कम, जैव वैविद्यता की वृद्धि + जानवरों को आश्रय प्रदान करता है। ईधन/पेड़ों से प्राप्त उत्पाद/जैविक पदार्थ, चारागाह के लिए उपयुक्त, खाद्यानो का उत्पादन, फसल चक्र व सहफसली प्रणाली, इत्यदि।

एली (सकरी गली) फसल प्रणाली :

तेज हवा का बहाव एवं मिट्टी का कटाव कम, जैव वैविद्यता की वृद्धि + ईधन/पेढ़ों से प्राप्त उत्पाद/जैविक पदार्थ। अधिक व्यवसायिक मूल्य वाले फसलों (सब्जी) की प्रणाली का प्रोत्साहन, इत्यादि।

This programme is organised with the financial assistance of European Union.